प्रकाशक
लाला खज़ानचीराम जैन, मैनेजिंग प्रोप्राइटर, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता, गली नन्हेखां, कूचा चेलां, फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली।

मुद्रक
लाला खज़ानचीराम जैन, मनोहर इलैक्ट्रिक प्रेस, गली नन्हेखां, कूचा चेलां फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली।

कृतज्ञता-प्रकाश

हम उन कहानी-लेखकों का हृदय से धन्यवाद करते हैं जिनकी कहानियां हमने इस संग्रह में ली हैं। आशा ही नहीं, विश्वास है कि हमारा धन्यवाद स्वीकार कर वे हमें उपकृत करेंगे।

—प्रकाशक

सूची

दो शब्द

हिन्दी-गल्प-साहित्य विविध धाराओं में प्रवाहित हो रहा है। पिछले तीस वर्षों में जितनी उन्नति हिन्दी-साहित्य की इस प्रमुख धारा ने की है उतनी दूसरी किसी ने नहीं। अब यह साहित्य अपने शैशव-काल को समाप्त कर चुका है; अब इसमें प्रौढ़ता आ चुकी है, शक्ति आ चुकी है और अब यह विश्व की किसी भाषा के गल्प-साहित्य के सम्मुख स्वाभिमान की रक्षा कर सकता है।

हिन्दी में इस क्रान्तिकारी विकास का आरम्भ सन १९१६ से हुआ। यह वर्ष हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक सुनहरी वर्ष है। इस वर्ष हिन्दी में श्री प्रेमचन्द जी की सर्वप्रथम कहानी छपी थी। प्रेमचन्द जी एक अद्वितीय जादूभरी लेखनी लेकर तूफान की तरह आये। उन्होंने आते ही अपनी कलामयी प्रतिभा से गल्प-साहित्य के प्राचीन उद्देश्य अथवा आदर्श को एकदम बदल दिया। गल्प-साहित्य एक नवीन धारा में प्रवाहित होने लगा। आज हम गल्प-साहित्य का जो विशाल और उन्नत स्वरूप देख रहे हैं, निस्सन्देह उसका अधिकांश श्रेय श्री प्रेमचन्द जी को ही है।

प्रेमचन्द जी ने स्वयं लिखा और अनेक लेखकों को अपनी ओर आकृष्ट किया। उन्होंने अपनी चुस्त और मुहावरेदार भाषा, साधारण मानव के घरेलू जीवन के मनोमुग्धकारी चित्रों और जीते-जागते चलते-

फिरते सजीव पात्रों की अपूर्व सृष्टि से गल्प-साहित्य में एक नई धारा का प्रवर्तन किया ।

दूसरे महान् कलाकार, जिनका हिन्दी-साहित्य पर स्थायी प्रभाव पड़ा, प्रसाद जी हैं। वे प्रेमचन्द जी की तरह पूरे प्रत्यक्षवादी नहीं थे। अधिकांश में वे कल्पना-जगत् में विहार करते थे। उनकी कृतियों में घटनाओं का इतना महत्त्व नहीं जितना भावों का। उनकी भाषा काव्य-मयी और शैली भाव-प्रधान होती है।

तीसरे कलाकार जिन्होंने अपनी भाषा की तड़क-भड़क के बल पर अपने लिए गल्प-साहित्य में अलग स्थान बना लिया है, उग्र जी हैं। स्वनाम-धन्य उग्र जी की शैली में उग्रता है, कटुता है, व्यंग्य है और चोट करने की पूरी क्षमता है। आज से कुछ वर्ष पहले इनकी कृतियों का बोलबाला था। अपने समय में इनकी रचनाएँ बहुत ही लोकप्रिय रही हैं।

प्रायः आलोचकों ने हिन्दी-गल्प-साहित्य के पथ-प्रदर्शकों में इन तीन ही प्रमुख प्रतिभाओं को स्वीकार किया है; किन्तु कुछ एक आलोचक आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी को भी एक पृथक् धारा का प्रवर्तक मानते हैं। उनके मत में शास्त्री जी की कहानियों में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो उन्हें दूसरे कलाकारों से एकदम अलग कर देती हैं। सर्वप्रथम इनकी भाषा में एक अपूर्व मादकता है, जो दूसरे लेखकों में कम मिलती है। दूसरे कहानी का वातावरण बांधने में ये बहुत सिद्ध-हस्त हैं। भावों का सूक्ष्म विश्लेषण इनकी तीसरी विशेषता है। कुछ भी हो शास्त्री जी की साहित्य-सेवाएँ असंदिग्ध हैं और साहित्य में इनका विशेष आदरपूर्ण स्थान है।

हिन्दी-कथा-साहित्य में इन्हीं मुख्य धाराओं का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। वैसे तो कुछ एक विद्वान् इनके अतिरिक्त एक और "अनुवाद धारा" भी स्वीकार करते हैं, परन्तु अनुवाद सुन्दर होते हुए भी पराई वस्तु हैं और उन्हें हिन्दी की वास्तविक सामग्री स्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत संग्रह में इस युग के प्रमुख लेखकों की रोचक और शिक्षा-प्रद कहानियों का संकलन करने का यत्न किया गया है। यद्यपि शिक्षा कहानी का एकमात्र उद्देश्य नहीं तो भी सूक्ष्म रूप से सत्प्रेरणाओं को अंकुरित करना तो साहित्य का उद्देश्य होना ही चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि कहीं तनिक भी अश्लीलता न आने पाय। इसी कारण से शृंगार रस की कहानियों को इस संग्रह में स्थान नहीं दिया गया। संकलन को रोचक और प्रभावोत्पादक बनाने में हम कहां तक सफल हो सके हैं इसका ठीक अनुमान तो पाठक महोदय ही लगा सकेंगे।

—सम्पादिका

श्री प्रेमचंद

(१८८०—१९३६)

आप हिन्दी-कथा-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे। कथा-साहित्य की आधुनिक प्रगति आपकी बहुमुखी उज्ज्वल प्रतिभा की अत्यन्त ऋणी है।

आपका जन्म सन १८८० में काशी के समीप मढ़वा नाम के एक गांव में हुआ। शिक्षा समाप्त करने के बाद आप वहीं स्कूल में अध्यापन-कार्य करने लगे और धीरे धीरे उन्नति करके सब-डिप्टी-इन्सपेक्टर के पद पर पहुंच गये। आपके विचार शुरू से ही राष्ट्रीय थे। देश-प्रेम आपके हृदय में कूट कूट कर भरा हुआ था। इसी प्रेरणा से १९१९ में जब कांग्रेस ने देश में असहयोग-आन्दोलन प्रारंभ किया, आपने भी नौकरी से इस्तीफा देकर अपने त्याग और देश-प्रेम का प्रमाण दिया। तब से आप सारा समय साहित्य-सृजन में लगाने लगे।

आप बहुत पहले से उर्दू में लिखते आ रहे थे। आपकी सब से पहली कहानी 'संसार का सब से अनमोल रत्न' सन १९०७ में ज़माना में छपी थी। हिन्दी-क्षेत्र में आपने १९१६ में प्रवेश किया। तब से लेकर जीवन भर आप हिन्दी और नागरी-लिपि का निरन्तर समर्थन करते रहे।

आप प्रत्यक्षवादी कलाकार हैं; किन्तु आपका प्रत्यक्षवाद आदर्श और मर्यादा का छोर पकड़े हुए है। इस सुन्दर सम्मिश्रण ने आपकी कला में एक अद्भुत चमत्कार भर दिया है जो पाठक के हृदय को सहज ही में मुग्ध कर देता है। आपकी कहानियां अत्यन्त रोचक होती हैं और उनमें राष्ट्रीयता और समाज-सुधार की प्रेरणा प्रबल मात्रा में रहती है। आपकी भाषा चुस्त और मुहावरेदार होती है; पाठक को अपने प्रवाह के साथ बहा ले जाने की क्षमता उसमें खूब रहती है।

रानी सारन्धा

(१)

अंधेरी रात के सन्नाटे में धसान नदी चट्टानों से टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमुर घुमुर करती हुई चक्कियां। नदी के दाहिने तट पर एक टीला है। उस पर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है जिसको जंगली वृक्षों ने घेर रखा है। टीले के पूर्व की ओर एक छोटा-सा गांव है। यह गढ़ी और गांव दोनों एक बुन्देला सरदार के कीर्ति-चिन्ह हैं। शताब्दियां व्यतीत हो गईं, बुन्देलखण्ड में कितने ही राज्यों का उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और गये, बुन्देला राजा उठे और गिरे—कोई गांव, कोई इलाका ऐसा न था जो इन दुर्व्यवस्थाओं से पीड़ित न हो, मगर इस दुर्ग पर किसी शत्रु की विजय-पताका न लहराई और इस गांव में किसी विद्रोह का भी पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। यह जमाना ही ऐसा था जब मनुष्यमात्र को अपने बाहु-बल और पराक्रम ही का भरोसा था। एक ओर मुसलमान सेनाएं पैर जमाये खड़ी रहती थीं, दूसरी ओर बलवान् राजा अपने निर्बल भाइयों का गला घोंटने पर तत्पर रहते थे। अनिरुद्धसिंह के पास सवारों और

प्यादों का एक छोटा-सा मगर सजीव दल था। इससे वह अपने कुल और मर्यादा की रक्षा किया करता था। उसे कभी चैन से बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतला देवी से हुआ था, मगर अनिरुद्ध विहार के दिन और विलास की रातें पहाड़ों में काटता था और शीतला उसकी जान की ख़ैर मनाने में। वह कितनी बार पति से अनुरोध कर चुकी थी, कितनी ही बार उसके पैरों पर गिरकर रोई थी कि तुम मेरी आंखों से दूर न रहो, मुझे हरिद्वार ले चलो, मुझे तुम्हारे साथ वनवास अच्छा है, यह वियोग अब नहीं सहा जाता। उसने प्यार से कहा, जिद से कहा, विनय की, मगर अनिरुद्ध बुन्देला था। शीतला अपने किसी हथियार से उसे परास्त न कर सकी।

(२)

अंधेरी रात थी। सारी दुनिया सोती थी, मगर तारे आकाश में जागते थे, शीतला देवी पलंग पर पड़ी करवटें बदल रही थी और उसकी ननद सारन्धा फ़र्श पर बैठी हुई मधुर स्वर से गाती थी—

बिनु रघुबीर कटत नहिं रैन।

शीतला ने कहा—जी न जलाओ। क्या तुम्हें भी नींद नहीं आती ?

सारन्धा—तुम्हें लोरी सुना रही हूं।

शीतला—मेरी आंखों से तो नींद लोप हो गई।

सारन्धा—किसी को ढूंढ़ने गई होगी।

इतने में द्वार खुला और एक गठे हुए रूपवान पुरुष ने भीतर

प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे हुए थे, और बदन पर कोई हथियार न था। शीतला चारपाई से उतर कर ज़मीन पर बैठ गई।

सारन्धा ने पूछा—भैया, यह कपड़े भीगे क्यों हैं?

अनिरुद्ध—नदी तैर कर आया हूं।

सारन्धा—हथियार क्या हुए?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथ के आदमी?

अनिरुद्ध—सबने वीर-गति पाई।

शीतला ने दबी ज़बान से कहा—ईश्वर ने ही कुशल किया। मगर सारन्धा के तीवरों पर बल पड़ गये और मुखमण्डल गर्व से सतेज होगया। बोली—भैया, तुमने कुल की मर्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।

सारन्धा भाई पर जान देती थी। उसके मुँह से यह धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेद से विकल हो गया। वह वीराग्नि, जिसे क्षण भर के लिए अनुराग ने दबा लिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उलटे पांव लौटा और यह कह कर बाहर चला गया—"सारन्धा, तुमने मुझे सदैव के लिए सचेत कर दिया। यह बात मुझे कभी न भूलेगी।"

अंधेरी रात थी। आकाश-मण्डल में तारों का प्रकाश बहुत धुंधला था। अनिरुद्ध किले से बाहर निकला। पल-भर में नदी के उस पार जा पहुंचा और फिर अंधकार में लुप्त हो गया। शीतला उसके पीछे-पीछे किले की दीवारों तक आई, मगर जब

अनिरुद्ध छलांग मार कर बाहर कूद पड़ा तो वह विरहिणी एक चट्टान पर बैठकर रोने लगी।

इतने में सारन्धा भी वहीं आ पहुंची। शीतला ने नागिन की तरह बल खा कर कहा—मर्यादा इतनी प्यारी है?

सारन्धा—हां।

शीतला—अपना पति होता तो हृदय में छिपा लेती।

सारन्धा—ना, छाती में छुरा चुभा देती।

शीतला ने ऐंठकर कहा—चोली में छिपाती फिरोगी, मेरी बात गिरह में बांध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊंगी।

इस घटना के तीन महीने बाद अनिरुद्ध महरौनी को जीत करके लौटा और साल-भर पीछे सारन्धा का विवाह ओरछा के राजा चम्पतराय से हो गया। मगर उस दिन की बातें दोनों महिलाओं के हृदयस्थल में कांटे की तरह खटकती रहीं।

(२)

राजा चम्पतराय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। सारी बुन्देला जाति उनके नाम पर जान देती थी और उनके प्रभुत्व को मानती थी। गद्दी पर बैठते ही उन्होंने मुगल बादशाहों को कर देना बंद कर दिया और वे अपने बाहुबल से राज्य-विस्तार करने लगे। मुसलमानों की सेनाएं बार बार उन पर हमले करती थीं, पर हार कर लौट जाती थीं।

यही समय था जब अनिरुद्ध ने सारन्धा का चम्पतराय

बादशाह के सामने आज आप आदर से सिर झुकाते हैं वह कल आपके नाम से कांपता था। रानी से चेरी होकर भी प्रसन्न-चित्त होना मेरे वश में नहीं है। आपने यह पद और विलास की सामग्रियां बड़े महंगे दामों मोल ली हैं।

चम्पतराय के नेत्रों पर से एक पर्दा-सा हट गया। वे अब तक सारन्धा की आत्मिक उच्चता को न जानते थे। जैसे वे-मां-बाप का बालक मां की चर्चा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछे की याद से चम्पतराय की आंखें सजल हो गईं। उन्होंने आदरयुक्त अनुराग के साथ सारन्धा को हृदय से लगा लिया।

आज से उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्ती की फ़िक्र हुई जहां से धन और कीर्ति की अभिलाषाएं खींच लाई थीं।

(४)

मां अपने खोये हुए बालक को पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतराय के आने से बुन्देलखण्ड निहाल होगया। ओरछा के भाग जागे। नौबतें झड़ने लगीं और फिर सारन्धा के नेत्र-कमलों में जातीय अभिमान का आभास दिखाई देने लगा!

यहां रहते-रहते महीने बीत गये। इस बीच में शाहजहां बीमार पड़ा। पहले से ईर्ष्या की अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्राम की तैयारियां होने लगीं। शाहजादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने-अपने दल सजा कर दक्खिन से चले। वर्षा के दिन थे। उर्वरा भूमि रंग-बिरंग के रूप भर कर अपने सौन्दर्य को दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन उमंगों से भरे हुए कदम बढ़ाते चले

आ रहे थे। यहां तक कि वे धौलपुर के निकट चम्बल के तट पर आ पहुंचे; परन्तु यहां उन्होंने बादशाही सेना को अपने शुभागमन के निमित्त तैयार पाया।

शाहज़ादे अब बड़ी चिन्ता में पड़े। सामने अगम्य नदी लहरें मार रही थी, किसी योगी के त्याग के सदृश। विवश हो कर चम्पतराय के पास संदेश भेजा कि खुदा के लिए आकर हमारी डूबती हुई नाव को पार लगाइये।

राजा ने भवन में जाकर सारन्धा से पूछा—इसका क्या उत्तर दूं?

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दाराशिकोह से वैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है; परन्तु हाथ फैलाने की मर्यादा भी तो निभानी चाहिए।

चम्पतराय—प्रिये, तुमने सोचकर जवाब नहीं दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ, मैं अच्छी तरह जानती हूं कि यह मार्ग कठिन है। और अब हमें अपने योद्धाओं का रक्त पानी के समान बहाना पड़ेगा; परन्तु हम अपना रक्त बहायेंगे, और चम्बल की लहरों को लाल कर देंगे। विश्वास रखिए कि जब तक नदी की धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरों का कीर्तिगान करती रहेगी। जब तक बुन्देलों का एक भी नामलेवा रहेगा, ये रक्त-बिन्दु उसके माथे पर केशर का तिलक बनकर चमकेगा।

वायु-मण्डल में मेघराज की सेनाएं उमड़ रही थीं। ओरछे के

किले से बुन्देलों की एक काली घटा उठी और वेग के साथ चम्बल की तरफ़ चली। प्रत्येक सिपाही वीर-रस से झूम रहा था। सारन्धा ने दोनों राजकुमारों को गले से लगा लिया और राजा को पान का बीड़ा देकर कहा—बुन्देलों की लाज अब आपके हाथ है।

आज उसका एक-एक अंग मुस्करा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलों की यह सेना देखकर शाहज़ादे फूले न समाये। राजा वहां की अंगुल-अंगुल भूमि से परिचित थे। उन्होंने बुन्देलों को तो एक आड़ में छिपा दिया और शाहज़ादों की फ़ौज को सजा कर नदी के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चले। दारा शिकोह को भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाट से नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाट पर से मोर्चे हटा लिये। घाट में बैठे हुए बुन्देले इसी ताक में थे। बाहर निकल पड़े और उन्होंने तुरन्त ही नदी में घोड़े डाल दिये। चम्पतराय ने शाहज़ादा दारा शिकोह को भुलावा देकर अपनी फ़ौज घुमा दी और वह बुन्देलों के पीछे चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चाल में सात घण्टों का विलम्ब हुआ; परन्तु जाकर देखा तो सात सौ बुन्देलों की लाशें तड़प रही थीं।

राजा को देखते ही बुन्देलों की हिम्मत बंध गई। शाहज़ादों की सेना ने भी 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि के साथ धावा किया। बादशाही सेना में हलचल पड़ गई। उनकी पंक्तियां छिन्न-भिन्न हो गईं, हाथों-हाथ लड़ाई होने लगी, यहां तक कि शाम हो गई। रणभूमि रुधिर से लाल हो गई और आकाश

में अंधेरा हो गया। घमासान की मार हो रही थी। बादशाही सेना शाहज़ादों को दबाये आती थी। अकस्मात् पश्चिम से फिर बुन्देलों की एक लहर उठी और इस वेग से बादशाही सेना की पुश्त पर टकराई कि उसके कदम उखड़ गये। जीता हुआ मैदान हाथ से निकल गया। लोगों को कुतूहल था कि यह दैवी सहायता कहां से आई। सरल स्वभाव के लोगों की धारणा थी कि यह फ़तह के फ़रिश्ते हैं, शाहज़ादों की मदद के लिए आये हैं; परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गये तो सारन्धा ने घोड़े से उतर कर उनके पैरों पर सिर झुका दिया। राजा को असीम आनन्द हुआ। यह सारन्धा थी।

समर-भूमि का दृश्य इस समय अत्यन्त दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहां सजे हुए वीरों के दल थे, वहां अब बेजान लाशें तड़प रही थीं। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए अनादि काल से ही भाइयों की हत्या की है।

अब विजयी सेना लूट पर टूटी। पहले मर्द मर्दों से लड़ते थे। वह वीरता और पराक्रम का चित्र था, यह नीचता और दुर्बलता की ग्लानिप्रद तस्वीर थी। उस समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशु से भी बढ़ गया था।

इस नोच-खसोट में लोगों को बादशाही सेना के सेनापति वलीबहादुरखां की लाश दिखाई दी। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अपनी दुम से मक्खियां उड़ा रहा था। राजा को घोड़ों का शौक था। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। यह एराक़ी ज़ाति का अति सुन्दर घोड़ा था। एक-एक

अंग सांचे में ढला हुआ, सिंह की-सी छाती; चीते की सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामी-भक्ति देखकर लोगों को बड़ा कुतूहल हुआ। राजा ने आज्ञा दी—खबरदार! इस प्रेमी पर कोई हथियार न चलाये, इसे जीता पकड़ लो, यह मेरे अस्तबल की शोभा बढ़ायेगा। जो इसे मेरे पास लायेगा, उसे धन से निहाल कर दूंगा।

योद्धागण चारों ओर से लपके; परन्तु किसी को साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई चुमकारता था, कोई फन्दे में फंसाने की फ़िक्र में था। पर कोई उपाय सफल न होता था। वहां सिपाहियों का मेला-सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमे से निकली और निर्भय होकर घोड़े के पास चली गई। उसकी आंखों में प्रेम का प्रकाश था, छल का नहीं। घोड़े ने सिर झुका दिया। रानी ने उसकी गर्दन पर हाथ रखा, और वह उसकी पीठ सुहलाने लगी। घोड़े ने उसके अञ्चल में मुंह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़ कर खेमे की ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला, मानो सदैव से उसका सेवक हो।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़े ने सारन्धा से भी निष्ठुरता की होती। यह सुन्दर घोड़ा आगे चलकर इस राज-परिवार के लिए स्वर्णजटित मृग सिद्ध हुआ।

(५)

संसार एक रण-क्षेत्र है। इस मैदान में उसी सेनापति को विजय-लाभ होता है जो अवसर को पहचानता है। वह अवसर

पर जितने उत्साह से आगे बढ़ता है, उतने ही उत्साह से आपत्ति के समय पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्र का निर्माता होता है और इतिहास उसके नाम पर यश के फूलों की वर्षा करता है।

पर इस मैदान में कभी-कभी ऐसे सिपाही भी जाते हैं जो अवसर पर कदम बढ़ाना जानते हैं. लेकिन संकट में पीछे हटना नहीं जानते। ये रणवीर पुरुष विजय को नीति की भेंट कर देते हैं। वे अपनी सेना का नाम मिटा देंगे, किन्तु जहां एक बार पहुंच गये हैं, वहां से कदम पीछे न हटायेंगे। उनमें कोई विरला ही संसार-क्षेत्र में विजय प्राप्त करता है, किन्तु उसकी हार विजय से भी अधिक गौरवात्मक होती है। अगर अनुभवशील सेनापति राष्ट्रों की नींव डालता है, तो आन पर जान देनेवाला, मुंह न मोड़ने वाला सिपाही राष्ट्र के भावों को उच्च करता है, और उसके हृदय पर नैतिक गौरव को अंकित कर देता है। उसे इस कार्यक्षेत्र में चाहे सफलता न हो, किन्तु जब किसी वाक्य या सभा में उसका नाम जबान पर आ जाता है, तो श्रोतागण एक स्वर से उसके कीर्ति-गौरव को प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्धा 'आन पर जान देनेवालों' में थी।

शाहजादा मुहीउद्दीन चम्बल के किनारे से आगरे की ओर चला तो सौभाग्य उसके सिर पर मोछल हिलाता था। जब वह आगरे पहुंचा तो विजयदेवी ने उसका सिंहासन सजा दिया।

औरंगजेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारों के अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्य-पद लौटा दिये और राजा चम्पतराय

को उसके बहुमूल्य कृत्यों के उपलक्ष्य में बारह हज़ारी मनसब प्रदान किया। ओरछा से बनारस और बनारस से जमुना तक उसकी जागीर नियत की गई। बुन्देला राजा फिर राज-सेवक बना, वह फिर सुख-विलास में डूबा और रानी सारन्धा फिर पराधीनता के शोक में घुलने लगी।

वलीबहादुरखां बड़ा वाक्य-चतुर मनुष्य था। उसकी मृदुता ने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीर का विश्वास-पात्र बना दिया। उस पर राज-सभा में सम्मान की दृष्टि पड़ने लगी।

ख़ांसाहब के मन में अपने घोड़े के हाथ से निकल जाने का बड़ा शोक था। एक दिन कुंवर छत्रसाल उसी घोड़े पर सवार होकर सैर को गया था, वह ख़ांसाहब के महल की तरफ़ जा निकला। वलीबहादुर ऐसे ही अवसर की ताक में था। उसने तुरंत अपने सेवकों को इशारा किया। राजकुमार अकेला क्या करता? पांव-पांव घर आया और उसने सारन्धा से सब समाचार वर्णन किया। रानी का चेहरा तमतमा गया। बोलीं—"मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा हाथ से चला गया, शोक इस बात का है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा? क्या तेरे शरीर में बुन्देलों का रक्त नहीं है? घोड़ा न मिलता न सही, किन्तु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुन्देला बालक से उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।"

यह कह कर अपने पचीस योद्धाओं को तैयार होने की आज्ञा दी, स्वयं अस्त्र धारण किये और योद्धाओं के साथ वली-बहादुरखां के निवासस्थान पर जा पहुंची। ख़ांसाहब उसी

घोड़े पर सवार होकर दरबार चले गये थे। सारन्धा दरबार की तरफ़ चली, और एक क्षण में किसी वेगवती नदी के सदृश बादशाही दरबार के सामने जा पहुंची। यह कैफ़ियत देखते ही दरबार में हलचल मच गई। अधिकारी वर्ग इधर-उधर से आ कर जमा हो गये। आलमगीर भी सहन में निकल आये। लोग अपनी-अपनी तलवारें संभालने लगे और चारों तरफ़ शोर मच गया। कितने ही नेत्रों ने इसी दरबार में अमरसिंह की तलवार की चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर याद आ गई।

सारन्धा ने उच्च स्वर से कहा—ख़ांसाहब ! बड़ी लज्जा की बात है कि आपने वही वीरता, जो चम्बल के तट पर दिखानी चाहिए थी, आज एक अबोध बालक के सम्मुख दिखाई है। क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते ?

वलीबहादुरख़ां की आंखों से अग्नि-ज्वाला निकल रही थी। वे कड़ी आवाज़ से बोले—किसी ग़ैर की क्या मजाल है कि मेरी चीज़ अपने काम में लाये ?

रानी—वह आपकी चीज़ नहीं, मेरी है। मैंने उसे रण-भूमि में पाया है और उस पर मेरा अधिकार है। क्या रण-नीति की इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते ?

ख़ांसाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदले में सारा अस्तबल आपकी नज़र है।

रानी—मैं अपना घोड़ा लूंगी।

ख़ांसाहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूं, परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता !

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवार से होगा। बुन्देला योद्धाओं ने तलवारें सूत लीं, और निकट था कि दरबार की भूमि रक्त से प्लावित हो जाय, बादशाह आलमगीर ने बीच में आकर कहा—रानी साहिबा, आप सिपाहियों को रोकें। घोड़ा आपको मिल जायेगा, परन्तु इसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व देने को तैयार हूं।

बादशाह—जागीर और मनसब भी ?

रानी—जागीर और मनसब कोई चीज़ नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी ?

रानी—हां, राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़े के लिए ?

रानी—नहीं, उस पदार्थ के लिए जो संसार में सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इसी भांति रानी ने घोड़े के लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज-पद और राज-सम्मान सब हाथ से खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्य के लिए कांटे बोये। इस घड़ी से अन्त दशा तक चम्पतराय को शान्ति न मिली।

(६)

राजा चम्पतराय ने फिर ओरछा के किले में पदार्पण किया। उन्हें मनसब और जागीर के हाथ से निकल जाने का अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उन्होंने अपने मुंह से शिकायत का

एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धा के स्वभाव को भली भांति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्म-गौरव पर कुठार का काम करती।

कुछ दिन यहां शान्ति से व्यतीत हुए। लेकिन बादशाह सारन्धा की कठोर बातें भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्यों ही भाइयों की ओर से निश्चिंत हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतराय का गर्व चूर्ण करने के लिए भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहिम पर नियुक्त किये। शुभकरण बुन्देला बादशाह का सूबेदार था। वह चम्पतराय का बचपन का मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतराय को परास्त करने का बीड़ा उठाया। और भी कितने ही बुन्देला सरदार राजा से विमुख होकर बादशाही सूबेदार से आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयों की तलवारें रक्त से लाल हुईं। यद्यपि इस समर में राजा को विजय प्राप्त हुई, लेकिन उनकी शक्ति सदा के लिए क्षीण हो गई। निकटवर्ती बुन्देला राजा, जो चम्पतराय के बाहुबल थे, बादशाह के कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियों में कुछ तो काम आये, कुछ दग़ा कर गये। यहां तक कि निज सम्बन्धियों ने भी आंखें चुरा लीं। परन्तु इन कठिनाइयों में भी चम्पतराय ने हिम्मत नहीं हारी, धीरज को न छोड़ा। उन्होंने ओरछा छोड़ दिया और वे तीन वर्ष तक बुन्देलखण्ड के सघन पर्वतों में छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएं शिकारी जानवरों की भांति सारे देश में मंडरा रही थीं। आये-दिन राजा का किसी-न-किसी से सामना हो जाता था। सारन्धा

सदैव उनके साथ रहती और उनका साहस बढ़ाया करती। बड़ी-बड़ी आपत्तियों में जब धैर्य लुप्त हो जाता—और आशा साथ छोड़ देती—आत्म-रक्षा का धर्म उसे संभाले रहता था। तीन साल के बाद अन्त में बादशाह के सूबेदारों ने आलमगीर को सूचना दी कि इस शेर का शिकार आपके सिवाय और किसी से न होगा। उत्तर आया कि सेना को हटा लो और घेरा उठा लो। राजा समझा कि संकट से निवृत्ति हुई, पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।

(७)

तीन सप्ताह से बादशाही सेना ने ओरछा घेर रखा है। जिस तरह कठोर वचन हृदय को छेद डालते हैं, उसी तरह तोपों के गोलों ने दीवारों को छेद डाला है। किले में २० हजार आदमी घिरे हुए हैं, लेकिन उनमें आधे से अधिक स्त्रियां और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दों की संख्या दिनों-दिन न्यून होती जाती है। आने-जाने के मार्ग चारों तरफ़ से बन्द हैं। हवा का भी गुज़र नहीं। रसद का सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियां पुरुषों और बालकों को जीवित रखने के लिए आप उपवास करती हैं। लोग बहुत हताश हो रहे हैं। औरतें सूर्य नारायण की ओर हाथ उठा-उठा कर शत्रु को कोसती हैं। बालक-वृन्द मारे क्रोध के दीवारों की आड़ से उन पर पत्थर फेंकते हैं, जो मुश्किल से दीवार के उस पार जा पाते हैं।। राजा चम्पत-राय स्वयं ज्वर से पीड़ित हैं। उन्होंने कई दिन से चारपाई नहीं

छोड़ी। उन्हें देखकर लोगों को कुछ ढाढ़स होता था, लेकिन उन की बीमारी से सारे किले में निराशा छाई हुई है।

राजा ने सारन्धा से कहा—आज शत्रु जरूर किले में घुस आयेंगे।

सारन्धा—ईश्वर न करे कि इन आंखों से वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिंता इन अनाथ स्त्रियों और बालकों की है। गेहूं के साथ ये घुन भी पिस जायंगे।

सारन्धा—हम लोग यहां से निकल जायं तो कैसा?

राजा—इन अनाथों को छोड़कर?

सारन्धा—इस समय इन्हें छोड़ देने ही में कुशल है। हम न होंगे तो शत्रु इन पर कुछ दया ही करेंगे।

राजा—नहीं। यह लोग मुझ से न छोड़े जायंगे। जिन मर्दों ने अपनी जान हमारी सेवा में अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चों को मैं कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहां रह कर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते?

राजा—उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं! मैं उनकी रक्षा में अपनी जान लड़ा दूंगा। उनके लिए बादशाही सेना की खुशामद करूंगा, कारावास की कठिनाइयां सहूंगा, किन्तु इस संकट में उन्हें छोड़कर नहीं जा सकूंगा।

सारन्धा ने लज्जित होकर सिर झुका लिया और सोचने लगी, निस्सन्देह प्रिय साथियों को आग की आंच में छोड़ कर

अपनी जान बचाना घोर नीचता है। मैं ऐसी स्वार्थान्ध क्यों हो गई हूं? लेकिन एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियों के साथ कोई अन्याय न किया जायगा तब तो आपको चलने में कोई बाधा न होगी?

राजा—(सोचकर) कौन विश्वास दिलायेगा?

सारन्धा—बादशाह के सेनापति का प्रतिज्ञा-पत्र।

राजा—हां, तब तो मैं सानन्द चलूंगा।

सारन्धा विचार-सागर में डूबी। बादशाह के सेनापति से क्योंकर यह प्रतिज्ञा कराऊं? कौन यह प्रस्ताव लेकर वहां जायगा और निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे? उन्हें तो अपनी विजय की पूरी आशा है। मेरे यहां ऐसा नीति-कुशल, वाक्पटु, चतुर कौन है, जो दुस्तर कार्य को सिद्ध करे? छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें यह सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मन में निश्चय करके रानी ने छत्रसाल को बुलाया। यह उसके चारों पुत्रों में सबसे बुद्धिमान् और साहसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसाल ने आकर रानी को प्रणाम किया तो उसके नेत्र सजल हो गये और हृदय से दीर्घ निःश्वास निकला।

छत्रसाल—माता! मेरे लिए क्या आज्ञा है?

रानी—आज लड़ाई का क्या ढंग है?

छत्रसाल—हमारे पचास योद्धा अब तक काम आ चुके हैं।

रानी—बुन्देलों की लाज अब ईश्वर के हाथ है।

छत्रसाल—हम आज रात को छापा मारेंगे।

रानी ने संक्षेप में अपना प्रस्ताव छत्रसाल के सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसे सौंपा जाय ?

छत्रसाल—मुझ को।

'तुम इसे पूरा कर सकोगे ?'

'हां, मुझे पूर्ण विश्वास है।'

'अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे।'

छत्रसाल जब चला तो रानी ने उसे हृदय से लगा लिया और तब आकाश की ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दयानिधि, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुन्देलों की आन के आगे भेंट कर दिया। अब इस आन को निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है, इसे स्वीकार करो।

(८)

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थाल में पूजा की सामग्री लिये मन्दिर को चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और आंखों तले अंधेरा छाया जाता था। वह मन्दिर के द्वार पर पहुंची थी कि उसके थाल में बाहर से आकर एक तीर गिरा। तीर की नोक पर एक काग़ज़ का पुर्जा लिपटा हुआ था। सारन्धा ने थाल मन्दिर के चबूतरे पर रख दिया और पुर्जे को खोलकर देखा, तो आनन्द से चेहरा खिल गया। लेकिन यह आनन्द क्षण-भर का था, हाय ! इस पुर्जे के लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथ से खो दिया है। कागज़ के टुकड़े को इतने महंगे दामों किसने लिया होगा ?

मन्दिर से लौटकर सारन्धा राजा चम्पतराय के पास गई और बोली, 'प्राणनाथ, आपने जो वचन दिया, उसे पूरा कीजिए।' राजा ने चौंककर पूछा, 'तुमने अपना वादा पूरा कर दिया?' रानी ने वह प्रतिज्ञा-पत्र राजा को दे दिया। चम्पतराय ने उसे गौरव से देखा, फिर बोले—अब मैं चलूंगा और ईश्वर ने चाहा तो एक बार फिर शत्रुओं की खबर लूंगा। लेकिन सारन, सच बताओ, इस पत्र के लिए क्या देना पड़ा है?

रानी ने कुण्ठित स्वर से कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूं?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजा को बाण-सा लगा। पूछा—कौन? अंगदराय?

रानी—नहीं।

राजा—रतनशाह?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल?

रानी—हां।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परों को फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भांति चम्पतराय पलंग से उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परम प्रिय पुत्र था। उनके भविष्य की सारी कामनाएं उसी पर अवलम्बित थीं। जब सचेत हुआ तब बोले, "सारन, तुमने बुरा किया। अगर छत्रसाल मारा गया तो बुन्देला वंश का नाश हो जायगा।"

अंधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार चम्पतराय को पालकी में बैठाये किले के गुप्त मार्ग से निकली जा रही थी। आज से बहुत काल पहले एक दिन ऐसी ही अंधेरी, दुःखमयी रात्रि में सारन्धा ने शीतला देवी को कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतला देवी ने उस समय जो भविष्य वाणी की थी, वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धा ने उसका उस समय जो उत्तर दिया था, वह भी पूरा होकर रहेगा?

(६)

मध्याह्न था। सूर्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसानेवाली प्रचण्ड, प्रखर वायु वन और पर्वत में आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था मानो अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगन-मण्डल इस भय से कांप रहा था। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार, चम्पतराय को लिये, पश्चिम की तरफ़ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भय के क्षेत्र से बाहर निकल आये हैं। राजा पालकी में अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीने में सराबोर थे। पालकी के पीछे पांच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे, प्यास के मारे सबका बुरा हाल था। तालु सूखा जाता था। किसी वृक्ष की छांह और कुएं की तलाश में आंखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धा ने पीछे की तरफ़ फिर कर देखा तो उसे

सवारों का एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। यह लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियों को लिये हमारी सहायता को आ रहे हों। नैराश्य में भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनटों तक वह इसी आशा और भय की अवस्था में रही। यहां तक कि वह दल निकट आगया और सिपाहियों के वस्त्र साफ़ नज़र आने लगे। रानी ने एक ठंडी सांस ली, उसका शरीर तृणवत् कांपने लगा। ये बादशाही सेना के लोग थे।

सारन्धा ने कहारों से कहा—डोली रोक लो। बुन्देला सिपाहियों ने भी तलवारें खींच लीं। राजा की अवस्था बहुत शोचनीय थी, किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस संकट का ज्ञान होते ही उनके जर्जर शरीर में वीरात्मा चमक उठी। वे पालकी का पर्दा उठाकर बाहर निकल आये। धनुष-बाण हाथ में ले लिया। किन्तु वह धनुष, जो उनके हाथ में इन्द्र का वज्र बन जाता था, इस समय ज़रा भी न झुका। सिर में चक्कर आया, पैर थर्राये, और वे धरती पर गिर पड़े। भावी अमंगल की सूचना मिल गई। उस पंख रहित पक्षी के सदृश जो सांप को अपनी तरफ़ आते देखकर ऊपर को उचकता और फिर गिर पड़ता है, राजा चम्पतराय फिर संभल कर उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धा ने उन्हें संभाल कर बैठाया, और रोकर बोलने की चेष्टा की। परन्तु मुंह से केवल इतना निकला—प्राणनाथ! इसके आगे उसके मुंह से एक शब्द

भी न निकल सका। आन पर मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियों की भांति शक्तिहीन हो गई। लेकिन एक अंश तक यह निर्बलता स्त्री-जाति की शोभा है।

चम्पतराय बोले—सारन, देखो हमारा एक और वीर जमीन पर गिरा। शोक! जिस आपत्ति से यावज्जीवन डरता रहा उसने इस अंतिम समय में आ घेरा। मेरी आंखों के सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीर में हाथ लगायेंगे, और मैं इस जगह से हिल भी न सकूंगा। हाय! मृत्यु तू कब आयगी! यह कहते-कहते उन्हें एक विचार आया। तलवार की तरफ़ हाथ बढ़ाया, मगर हाथों में दम न था। तब सारन्धा से बोले—प्रिये, तुमने कितने ही अवसरों पर मेरी आन निभाई है।

इतना सुनते ही सारन्धा के मुरझाये हुए मुख पर लाली दौड़ गई। आंसू सूख गये। इस आशा ने कि मैं अब भी पति के कुछ काम आ सकती हूं उसके हृदय में बल का संचार कर दिया। वह राजा की ओर विश्वासोत्पादक भाव से देखकर बोली—ईश्वर ने चाहा तो मरते दम तक निभाऊंगी।

रानी ने समझा—'राजा मुझे प्राण देने का संकेत कर रहे हैं।'

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दम तक न टालूंगी।

राजा—यह मेरी अंतिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धा ने तलवार को निकालकर अपने वक्षःस्थल पर रख लिया और कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है। मेरी हार्दिक

अभिलाषा है कि मरूं तो यह मस्तक आपके पद-कमलों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिए शत्रुओं के हाथ में छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियां पहने हुए दिल्ली की गलियों में निन्दा और उपहास का पात्र बनूं?

रानी ने जिज्ञासा-भरी दृष्टि से राजा को देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान मांगता हूं।

रानी—सहर्ष मांगिए।

राजा—यह मेरी अंतिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूंगा, करोगी?

रानी—सिर के बल करूंगी।

राजा—देखो, तुमने वचन दिया है। इनकार न करना।

रानी—(कांपकर) आपके कहने की देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छाती में चुभो दो।

रानी के हृदय पर वज्राघात-सा हो गया। बोली—जीवन-नाथ! इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी। आँखों में नैराश्य छा गया।

राजा—मैं बेड़ियां पहनने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—मुझसे यह कैसे होगा?

पांचवां और अंतिम सिपाही धरती पर गिरा। राजा ने झुंझलाकर कहा—इसी जीवन पर आन निभाने का गर्व था?

बादशाह के सिपाही राजा की तरफ़ लपके। राजा ने नैराश्यपूर्ण भाव से रानी की ओर देखा। रानी क्षण भर अनिश्चित रूप से खड़ी रही। लेकिन संकट में हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान् हो जाती है। सिपाही लोग राजा को पकड़ने ही वाले थे कि सारन्धा ने दामिनी की भांति लपककर अपनी तलवार राजा के हृदय में चुभो दी।

प्रेम की नाव प्रेम के सागर में डूब गई। राजा के हृदय से रुधिर की धारा निकल रही थी, पर चेहरे पर शान्ति छाई हुई थी।

कैसा हृदय है! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है! जो हृदय उसकी अभिलाषाओं का केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमान का पोषक था, उसी हृदय को सारन्धा की तलवार छेद रही है। किस स्त्री की तलवार से ऐसा काम हुआ है?

आह! आत्माभिमान का कैसा विषादमय अन्त है। उदय-पुर और मारवाड़ के इतिहास में भी आत्म-गौरव की ऐसी घटनाएं नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धा का यह साहस और धैर्य देख कर दङ्ग रह गये।

सरदार ने आगे बढ़ कर कहा—रानी साहिबा! ख़ुदा गवाह है; हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो उसे ब-सरो-चश्म बजा लायेंगे।

सारन्धा ने कहा—अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित रहा हो, तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कह कर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुभो ली। जब वह अचेत होकर धरती पर गिरी तो उसका सिर राजा चम्पतराय की छाती पर था।

श्री सुदर्शन

(जन्म-सन १८९६)

हिन्दी-कथा-साहित्य में स्व० प्रेमचन्द जी के बाद आपका ही सर्वोच्च स्थान है। विचार और कला दोनों की दृष्टि से आप प्रेमचन्द जी के बहुत समीप हैं। उनकी तरह आप भी उर्दू में ख्याति प्राप्त करने के बाद ही हिन्दी की ओर आये। आते ही अपनी सुलझी हुई प्रतिभा के बल पर आपने अपने लिए एक अन्यतम स्थान बना लिया। आपकी कहानियों की लोकप्रियता असंदिग्ध है। आपकी भाषा इतनी सरल और मधुर, यथार्थ चित्रण की शक्ति इतनी प्रबल और पात्रों की सृष्टि इतनी सजीव होती है कि पाठक का उससे प्रभावित न होना असंभव है। आपकी कला का आधार नैतिक है। आपके कथानकों में मनोरंजन की अपार शक्ति तो रहती ही है, साथ ही उनमें सदाचार, न्याय और नीति की ओर बड़ी कोमल रीति से आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता अवश्य होती है।

आपका जन्म स्यालकोट (पाकिस्तान) में सन १८९६ में हुआ। लिखने की ओर प्रवृत्ति आपमें बहुत छोटी अवस्था से थी। आप अभी छठी श्रेणी में ही पढ़ते थे कि आपने पहला लेख लिखा था। तब से यह रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती गई। कहानियों के अतिरिक्त आपने नाटक, प्रहसन और उपन्यास भी लिखे हैं और अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया है।

पुष्पलता, सुप्रभात, तीर्थयात्रा, सुदर्शन-सुधा, सुदर्शन-सुमन और नगीने आदि आपके अनेक कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

दो डाक्टर

(१)

उनमें आकाश-पाताल का अन्तर था।

दोनों डाक्टर थे। दोनों एक ही मुहल्ले में रहते थे। दोनों एक ही कालेज में पढ़े थे। दोनों ने एक साथ फाइनल की परीक्षा पास की थी। अब दोनों एक ही बाज़ार में प्रैक्टिस करते थे, और दोनों की दूकानें आमने-सामने थीं।

मगर फिर भी उनमें आकाश-पाताल का अन्तर था। एक का नाम फ़क़ीरचन्द था, दूसरे का अमीरचन्द। एक पुरानी लकीर का फ़कीर था, दूसरा सर्वथा नवीन-विचाराधीन। एक धर्म के नाम पर जान देता था, दूसरा उसकी खिल्ली उड़ाता था। एक पूजा-पाठ किये बिना मुँह में पानी डालना भी पाप समझता था, दूसरा कहता था—यह मूर्खों के युग की यादगार है। मगर फिर भी दोनों परस्पर मित्र थे, एक दूसरे को चाहते थे, एक दूसरे के सुख-दुःख में काम आते थे। यह देख कर लोगों को आश्चर्य होता था! एक ओर एक दूसरे से इतने दूर, दूसरी ओर एक दूसरे के इतने निकट। आग-पानी का ऐसा मेल संसार ने कम देखा होगा।

एक दिन फ़क़ीरचन्द ने अमीरचन्द से कहा—एक बात कहूं, मानोगे?

अमीरचन्द ने कुर्सी से उठते हुए सिगरेट सुलगाया, और फ़क़ीरचन्द की तरफ़ देखकर बोले—मालूम होता है, कोई ख़ास बात है। कहिए, क्या आज्ञा है ?

फ़क़ीरचन्द—पहले प्रतिज्ञा करो, मानोगे। फिर कहूंगा।

अमीरचन्द—अगर मानने लायक़ होगी, तो ज़रूर मानूंगा।

फ़क़ीरचन्द—इसकी शर्त नहीं। पहले प्रतिज्ञा करो।

अमीरचन्द ने सिगरेट की राख ज़मीन पर गिरा कर कहा—कोरे काग़ज़ पर हस्ताक्षर कराना चाहते हो ?

फ़क़ीरचन्द—अब यही समझ लो। अगर मुझपर विश्वास है, तो कर दो, नहीं है, तो न करो। बोलो, क्या कहते हो ?

अमीरचन्द—और अगर तुम दो-चार हज़ार का प्रोनोट लिख लो, तो फिर क्या करूंगा ? मैं लाख कहूं कि साहिब ! कोरे काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिये थे; मगर कौन सुनेगा ? सब यही कहेंगे कि बकता है; उस समय रुपया ले लिया, अब मांगा तो बातें बनाने लगा।

फ़क़ीरचन्द—(कन्धे से पकड़ कर कुर्सी पर बिठलाते हुए) इस तरह छुटकारा न होगा। प्रतिज्ञा करो, नहीं तो खाना-पीना छोड़ दूंगा। फिर मनाते फिरोगे।

अमीरचन्द—(गम्भीरता से) तुम डाक्टर हो, या कोतवाल ?

फ़क़ीरचन्द—तुम कोतवाल ही समझ लो, मगर प्रतिज्ञा करनी ही होगी। लो, अब मेरा समय नष्ट न करो। कहो, जो कहोगे, मानूंगा।

अमीरचन्द (विवशता से)—अच्छा भई, प्रतिज्ञा की। बको, क्या बकते हो ?

फ़क़ीरचन्द—बकता यह हूं कि तुमने आज तक कभी पूजा नहीं की, न कभी मन्दिर में गये हो; मगर कल जन्माष्टमी का दिन है। कल तुम्हें पूजा करनी होगी। बताओ, करोगे न ?

अमीरचन्द—अब मेरे बताने की बात ही कहां रह गई है ? तुमने वचन ले लिया, मुझे मानना होगा, मगर इससे तुम्हें क्या लाभ होगा, यह मैं अभी तक नहीं समझ सका।

फ़क़ीरचन्द—मेरा आत्मा प्रसन्न होगा—मेरा परमात्मा प्रसन्न होगा कि चलो एक बार तो तुमने उसकी पूजा कर ली।

अमीरचन्द ने फ़क़ीरचन्द की तरफ़ प्रेमपूर्ण आंखों से देखा और मुस्करा कर कहा—मेरा इरादा तो न था कि तुम्हारी स्वर्ग-पुरी में जाता, मगर मालूम होता है, तुम मुझे घसीटकर ले ही जाओगे। अब न मानूं, तो बुरा-सा मुंह बना लोगे। दो दिन खाना ही न खाओगे। तुम्हारा क्या बिगड़ेगा ? भाभी हमसे अप्रसन्न हो जाएंगी। न बाबा ! यह मुश्किल है। पूजा कर लेंगे।

यह कहकर वह सिगरेट का धुआं उड़ाने लगे। फ़क़ीरचन्द ने कहा—आज तुमने मेरा जी खुश कर दिया है।

अमीरचन्द—मगर यह पूजा की विधि क्या है, यह तो बता दो ?

फ़क़ीरचन्द—स्नान करके अकेले बैठ जाओ और माला

फेरो। इसके साथ ही राधाकृष्ण का नाम जपते जाओ। यही पूजा है।

अमीरचन्द—बस, इसी से परमात्मा खुश हो जायगा? यह तो बड़ा सहज उपाय है भई!

फ़क़ीरचन्द—(मुस्कराकर) तुमने क्या समझा था कि गले में रस्सा डालना होगा। (थोड़ी देर बाद) तुम्हारे पास माला है या नहीं?

अमीरचन्द—हम जैसे नास्तिकों के पास ऐसी शुभ वस्तुएं कहां? माला भेज दोगे, फेर लेंगे। न भेजोगे, न फेरेंगे। अब अगर तुमने कल माला न भेजी, तो सारा पाप तुम्हें लगेगा। हम परमात्मा से साफ़ कह देंगे कि इसे पकड़ो, इसने माला क्यों न भेजी! हम तो भक्तराज बनने पर तुले बैठे थे।

(२)

दूसरे दिन अमीरचन्द ने स्नान किया, और माला लेकर अलग कमरे में चले गये। स्त्री से, मां से और नौकर से कहा—हम। राधाकृष्ण का जाप करेंगे। कोई मिलने आये तो कह देना, इस समय नहीं मिल सकते, फिर आये।

यह आज्ञा देकर अमीरचन्द ने कमरे के द्वार अन्दर से बन्द कर लिये और आसन पर बैठ कर माला फेरने लगे। उनकी स्त्री सावित्री बाहिर एक चौकी पर बैठ गई और बच्चे का स्वेटर बुनने लगी।

एकाएक माधी भंगी घबराया हुआ आया, और कुछ परे

हैं। इतना भी न सोचा कि उसके मुंह पर ऐसी बात न कहूं, उस के दिल को लग जायगी। और तूने यह सब कुछ सुन लिया ?

माधी (ठंडी आह भरकर)—ग़रीबों को सब कुछ सुनना ही पड़ता है।

भंगिन—मगर क्या ग़रीबों को किसी और परमेश्वर ने बनाया है ? पूजा तो फिर भी हो सकती थी। परमेश्वर कहीं भागा न जाता था, पहले देख आता, फिर मज़े से बैठ कर सारा दिन पूजा करता। कौन रोकता था ?

माधी (दरवाज़े की तरफ़ देखकर)—आज माला ख़तम ही नहीं होती।

माधी जानता था, इस समय बुलाना ठीक नहीं; बड़े गुस्सा होंगे। आश्चर्य नहीं, मार कर निकाल दें। मगर वह बाप था, और उसका बेटा बेसुध था। उसके दिल को लगी थी । उससे बैठा न जाता था। एक-एक क्षण एक-एक साल से भी बढ़कर बीतता था। कुछ देर दिल और दिमाग़ में लड़ाई होती रही। इसके बाद वह उठकर दरवाज़े के पास चला गया और डरते डरते मगर विनीत भाव से बोला—डाक्टर साहब !

डाक्टर साहब ने मुंह से जवाब न दिया, केवल खांसकर रह गये; मगर माधी में इतनी बुद्धि कहां कि इस इशारे का मतलब समझता। वह दरवाज़े के और भी पास सरक गया और बोला—डाक्टर साहब !

डाक्टर साहब की आंखें क्रोध से लाल हो गईं। सोचने लगे, क्या मुझे अब इतना भी अधिकार नहीं, कि एक घंटा एकान्त

में बैठ कर माला फेर लूं ! सब से कह दिया था कि कोई न बुलाये, फिर भी आ गया। दूसरे क्षण में उन्होंने उठकर दर-वाज़ा खोल दिया और दहलीज़ पर खड़े होकर माधी की तरफ़ देखने लगे। मानो चुपकी क्रोध-भाषा में पूछते थे—बोल, क्या कहता है ?

अब माधी के मुंह से बात भी न निकलती थी, न भंगिन की जिह्वा में वाक्-शक्ति थी। दोनों चुपचाप खड़े कांप रहे थे।

अमीरचन्द ने क्रोध से कहा—क्या है ? क्या किसी ने तुम से कहा न था कि माला फेर रहे हैं !

माधी ने भंगिन की तरफ़ एक बार देखा; और फिर सिर झुका लिया। भंगिन ने आगे बढ़कर कहा—सरकार, आपकी सेवा-भक्ति करते हैं, आपके पास न आयें तो और कहां जाएं ! छोटू बेहोश पड़ा है।

अमीरचन्द ने जवाब न दिया।

माधी बोला—एक ही बेटा है ग़रीबनिवाज़ ! अगर उसे कुछ हो गया, तो हमारी सारी ज़िन्दगी खराब हो जायगी। मालिश कर-करके हार गये हैं। ज़रा हरकत नहीं करता। सिल के समान पड़ा है सरकार !

सावित्री नहाने के लिए जा रही थी। यह आवाज़ सुन कर तौलिया लिये हुए आंगन में चली आई और बोली—माधी, तू तो बड़ा ढीठ निकला। क्या मैंने तुझसे कह नहीं दिया था कि माला फेर रहे हैं, ज़रा रुक जा। तुम लोगों से जितनी नरमी की जाय, उतना ही सिर पर चढ़ जाते हो।

उत्तर में भंगिन कुछ कहना ही चाहती थी कि अमीरचन्द ने उसे इशारे से रोक दिया, और जरा नरम होकर बोले—किसी और को ले गये होते, मैं माला फेर रहा था।

माघी—सरकार, हम ग़रीबों की कौन सुनता है ? आपसे आशा थी, आपके पास चले आये।

अब अमीरचन्द का सारा क्रोध शान्त हो चुका था। जरा मुस्करा कर बोले—मगर क्या एक-आध घण्टा इन्तजार न कर सकते थे ? बताओ ?

माघी—(गिड़गिड़ा कर) बिलकुल बेहोश पड़ा है, सरकार ! ज़रा चलकर देख लें तो जीवन-भर दुआएं देता रहूंगा ! सारी उमर की कमाई है। अभी ब्याहे को एक ही महीना हुआ है।

अमीरचन्द ने माला रख दी और सूट पहन कर उनके साथ हो लिये। होश में लाने की कुछ दवाएं भी साथ ले लीं। जब लौटे, उस समय एक बज चुका था। उस समय तक भूखे-प्यासे वहीं बैठे उसको होश में लाने की कोशिश करते रहे। अब वह होश में था, और धीरे-धीरे बातें कर रहा था। भंगी और भंगिन का रोम-रोम अमीरचन्द को दुआएं दे रहा था। अमीरचन्द दस-ग्यारह बजे भोजन करते थे; मगर आज उन्हें इस नियम के टूट जाने की परवा न थी। आज भूखे-प्यासे होने पर भी वे शान्त, प्रसन्न-हृदय दिखाई देते थे। आज उन्होंने ग़रीबों की पुकार सुनी थी। आज उन्होंने फ़ीस न ली थी, फ़ीस के बदले दिल की दुआ ली थी।

अमीरचन्द जब खाना खाकर दूकान पर पहुंचे, उस समय उनकी दीवार की घड़ी में सवा दो बज चुके थे। कम्पाउण्डर ने कहा—सब रोगी लौट गये।

अमीरचन्द ने कोट उतार कर खूंटी पर लटकाते हुए कहा—लौट गये तो लौट जायं, कोई परवा नहीं।

कम्पाउण्डर ने एक चिट्ठी उनके हाथ में देकर कहा—सेठ मंगलदास का आदमी आया था। कहता था कि जिस समय आएं, उसी समय भेज देना। उसकी बेटी बहुत बीमार है।

अमीरचन्द ने रूमाल से मुंह साफ़ करके चिट्ठी ले ली, और उसे पढ़े बिना मेज़ पर रख दिया।

कम्पाउण्डर ने कहा—सेठ साहब का आदमी दो बार आकर लौट गया है। बड़ी ताकीद करता था। कहता था, फ़ौरन आ जायं।

अमीरचन्द ने कुर्सी पर बैठकर जवाब दिया—अच्छा!

इतने में डाक्टर फ़क़ीरचन्द ने अपनी दूकान पर से पुकार कर पूछा—अभी आये हैं या नहीं? आये हों तो भेज दो।

कम्पाउण्डर ने जवाब दिया—अभी आये हैं। (अमीरचन्द से) क्या कहूं? आपको बुला रहे हैं।

अमीरचन्द ने सिगरेट सुलगा कर दियासलाई ज़मीन पर फेंकी, और उसे पाँव तले मसल कर कहा—कहो यहां आजायं।

कम्पाउण्डर ने ऊंची आवाज़ से कहा—आपको बुला रहे हैं।

अमीरचन्द ने अपने-आपसे कहा—आज महाभारत छिड़ेगा।

दो मिनट बाद फ़क़ीरचन्द ने आकर पूछा—आज तो बड़ी देर में आये। अभी तक माला फेर रहे थे, या किसी को देखने चले गये थे ?

अमीरचन्द ने कुर्सी पर बैठे बैठे अपने मित्र की तरफ़ देखा, और ऐसे, जैसे कोई किसी की शिकायत करता है, बोले—भई, क्या कहूं ! इन मरीज़ों के मारे नाकों में दम है। दरवाज़ा बन्द कर लिया था, सबसे कह दिया था कि हमें कोई न बुलाये; मगर कौन सुनता है ? एक आदमी आकर दरवाज़ा तोड़ने लगा। जी तो चाहता है, डाक्टरी छोड़कर कोई और काम शुरू कर दूँ। यह भी कोई पेशा है, न दिन को चैन न रात को आराम ! कोई छः घंटे का नौकर है, कोई आठ का; यहां चौबीसों घंटों की गुलामी है। माला फेरने का भी अवकाश नहीं।

फ़क़ीरचन्द ने सिर हिलाया। मानो कह रहे थे, मुझे पहले ही आशा न थी। फिर कहा—कौन आया ? कोई अमीर होगा।

अमीरचन्द—अमीर होता, तो साफ़ जवाब दे देता। कह देता, किसी और को ले जाइए।

फ़क़ीरचन्द—तो क्या कोई भिखमंगा था, जिसके लिए माला धरी रह गई ?

अमीरचन्द—यही अपना भंगी माघी था, बड़ा गिड़गिड़ाता था। और गिड़गिड़ाता क्या था, रोता था। उसका एक ही लड़का है, वही बीमार है। मुझे दया आ गई। सोचा, कोई

अमीर हो तो मामूली बात है; जिसे फ़ीस दे, ले जाय। मगर उसके पास फ़ीस कहां ? जाना पड़ा।

फ़क़ीरचन्द—मेरे पास भी आया था। मैंने तो साफ़ कह दिया कि पहले पूजा कर लूं, फिर चलूंगा। वह चिल्लाने लगा, तो मैंने नौकर से कहा—बाहर निकाल दो। दुम दबाकर भाग गया। सवाल यह है कि आखिर कोई समय भगवान के लिए भी चाहिए या नहीं ? दुनियादारी तो दिन-रात होती रहती है। वहां कितनी देर लगी ?

अमीरचन्द—अब आया हूं।

फ़क़ीरचन्द—मेरा जी चाहता है, तुम्हारा कभी मुंह न देखूं। तुमने कल मुझसे क्या प्रतिज्ञा की थी ?

अमीरचन्द—(कान पकड़कर) बेशक भूल हो गई। अबके क्षमा कर दो।

फ़क़ीरचन्द—तुम्हारा सारा जीवन इसी तरह बीत जायगा। चौबीस घंटे दुनिया का काम करते हो, क्या तुम्हारे पास दो-चार पल भी परमेश्वर के लिए नहीं हैं ? मरोगे, तो नरक में जाओगे !

अमीरचन्द—(मुस्कराकर) वहां तो हज़ारों बीमार होंगे। मैं अकेला क्या करूंगा। हम तुम दोनों होंगे, तो किसी-न-किसी तरह काम चला लेंगे। चलोगे न मेरे साथ तुम भी ?

फ़क़ीरचन्द—तुम हँसते हो मुझे ज़हर चढ़ता है। अब रात को मन्दिर में दर्शन करने भी चलोगे या नहीं ? अगर न गये, तो याद रखो हमारा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं।

अमीरचन्द—क्यों, आज [illegible]?

फ़क़ीरचन्द—यहीं आठ बजे तक आ जायें, और क्या! [illegible] शायद न हो जाना।

अमीरचन्द—ऐसी क्या बात है।

मगर आठ बजे अमीरचन्द दुकान पर न थे। कम्पाउन्डर ने कहा—माधो आया था उसीके साथ चले गये हैं।

फ़क़ीरचन्द—[illegible] गये हैं या नहीं?

कम्पाउन्डर—जी हाँ, जाते हुए कह गये थे, [illegible], तो दुकान बन्द करके चले जाना। मेरा ख़याल है देर से लौटेंगे। वह बुड्ढा फिर बीमार हो गया है।

फ़क़ीरचन्द—ज़रा सोचो, सारी दुनिया भगवान के दर्शनों को जा रही है, लाला साहब भंगियों के मकानों की सैर कर रहे हैं। हम चाहते थे, यह भी दर्शन कर लें, मगर जब भाग्य ही फूटे हों, तो कोई क्या करे। ख़ैर, हमने अपना मित्र-धर्म पूरा कर दिया। हमें यही संतोष है।

कम्पाउन्डर—सवेरे सेठ मंगलदास का आदमी आया था और कह गया था कि आयें, तो भेज देना। जब चलने को तैयार हुए, तो वही माधो आ गया और रोने लगा। बस, सेठ की तरफ़ न गये, माधो के साथ चले गये।

फ़क़ीरचन्द—(आश्चर्य से) अरे, इतनी मूर्खता! यही ढंग है, तो प्रैक्टिस चल चुकी। फिर कहेंगे, हमें तो कोई पूछता ही नहीं। अरे बाबा, जब अपने-आपको खुद नहीं पूछते, तो तुम्हें और कौन पूछेगा? क्या ये भंगी चमार इन्हें खाना

दे देंगे ? न सवेरे माला फेरी, न रात को भगवान के दर्शन किये ! पूरा नास्तिक है । ऐसे आदमी का मुंह देखना भी पाप है ।

(४)

मगर दूसरे दिन अभी सूरज भी न निकला था कि उन्होंने अमीरचन्द को जा जगाया । अमीरचन्द ने उन्हें अपने पलंग पर बैठने को जगह देते हुए कहा—भई, मुझे बड़ा अफ़सोस है, मैं रात तुम्हारे साथ न जा सका । वह माघी फिर आकर मिन्नतें करने लगा । मैंने समझा, दस-बारह मिनट में वापिस आ जाऊंगा; मगर वहां साढ़े ग्यारह बज गये । अब किस मुंह से कहूं, क्षमा करो ? मैं जानता हूं, तुम कभी क्षमा न करोगे ।

फ़क़ीरचन्द—मैंने तो निश्चय कर लिया था कि तुमसे बात भी न करूंगा । जो आदमी वचन देकर फिर जाय, उसका क्या विश्वास ।

अमीरचन्द—(मुस्करा कर) भई, बोलना बन्द कर दो; मगर इस समय एक बार दर्शन दे जाया करो । चलो, हमारे लिए इतना ही बहुत है ।

फ़क़ीरचन्द—(सुनी अनसुनी करके) जानते हो मैं इस समय क्यों आया हूं ?

अमीरचन्द—कोई नई प्रतिज्ञा कराने आये होगे ।

फ़क़ीरचन्द—न बाबा, मैं बाज़ आया प्रतिज्ञा कराने से । मैं तुम्हें एक ख़ास ख़बर सुनाने आया हूं ।

अमीरचन्द ने शरीर के गिर्द कपड़ा लपेट लिया और बोले—सुनाओ।

फ़कीरचन्द—मुझे अफ़सोस सिर्फ़ यह है कि आप नहीं थे। मेरा ख़याल है, आपको मुझ पर विश्वास हो न सके। इसलिये (हँसता है)

अमीरचन्द—जो जितने शब्दों का भरोसा न करने से अयोग्य कर चुके हो, उससे आगे शब्दों में यह बात आ गया हो।

फ़कीरचन्द ने कहा—मुझे यह तो मालूम ही है कि मैं पूजा-पाठ को बहुत महत्व देता हूं। मगर मैं इतना प्राप्त करता ही हूं। आज भगवान जाने क्यों मेरी आंख तीन बजे ही खुल गई। मैंने सोचा, चलो, आज इसी समय पूजा कर लो। मैं नहा-धो कर पूजा के कमरे में चला गया और पूजा करने लगा। इतने में मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कमरा किसी अलौकिक प्रकाश से भर गया है। आंख उठा कर देखा तो मेरे सामने श्रीकृष्ण की मूर्ति न थी, स्वयं श्रीकृष्ण खड़े मुस्करा रहे थे।

अमीरचन्द—(आश्चर्य से) स्वयं श्रीकृष्ण खड़े मुस्करा रहे थे!

फ़कीरचन्द—मैंने उनकी तरफ़ देखा और फिर उनके चरण पकड़ लिये। उस समय मेरे मन की जो हालत थी, उसका बखान नहीं हो सकता—फूला न समाता था। समझा, जीवन की तपस्या सफल हो गई। भगवान अपने भक्त को दर्शन देने आ गये। दूसरे क्षण में भगवान ने मुझे उठाकर खड़ा कर दिया, और मेरी तरफ़ देखा। अब उनकी आंखों से आग की चिनगारियां

निकल रही थीं। बोले—"तू हमसे दिल्लगी करता है।" मुझे अपने शरीर का लहू सर्द होता मालूम हुआ। मैं बोलना चाहता था; मगर मुंह में वाक्-शक्ति न थी। मैंने डरते-डरते उनकी तरफ़ देखा, और गरदन झुका ली। उन्होंने कहा—"आज इस नगर में हज़ारों लोगों ने मेरी पूजा की है; मगर सब की पूजा दिखावा है। सच्ची पूजा एक ही आदमी ने की है, और वह तेरा मित्र अमीरचन्द है। मुझे खुश करना है, तो जाकर उससे अपने कड़वे वचनों के लिए माफी मांग। वह मेरा भक्त नहीं, भक्तराज है। यह कह कर भगवान ने मेरी पीठ पर प्यार से थपकी दी। देखते-देखते मुझपर बेसुधी-सी छा गई। जब सुध आई, तो वही कमरा था, वही मूर्ति, वही लैम्प। चारों तरफ़ देखा, श्रीकृष्ण कहीं भी न थे। जाने कहां से आये थे, कहां को चले गये।

कुछ देर दोनों मित्र चुपचाप सिर झुकाये बैठे रहे। इसके बाद अमीरचन्द बोले—मैं समझ गया, यह सपना था। तीन बजे उठे थे, पूजा करते करते झपकी आ गई। वर्ना हमारी क़िस्मत ऐसी कहाँ कि श्रीकृष्ण हमें अपना भक्त समझें। ज़रूर सपना था।

फ़क़ीरचन्द ने अमीरचन्द को श्रद्धाभाव से देखा और कहा—तुम इसे सपना कहते हो? मैं समझता हूं, मेरे सारे जीवन में यही घड़ियां होश-हवास की घड़ियां थीं। आज मैंने सत्य को देखा है। आज मैंने सत्य का तत्त्व पाया है। मैं अन्धकार में भटक रहा था, आज मेरी आंखें खुल गई हैं। आज मुझे आत्मा का उजाला मिल गया है।

ताई

(१)

"ताऊजी ! हमें लेलगाली (रेलगाड़ी) ला दोगे ?"—कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाहें फैलाकर कहा—हां बेटा, ला देंगे।

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया, और उसका मुख चूमकर बोले—क्या करेगा रेलगाड़ी ?

बालक बोला—उसमें बैठ के बली दूल जाएंगे। हम जाएंगे, चुन्नी को भी ले जाएंगे। बाबू जी को नहीं ले जाएंगे। हमें लेलगाली नहीं ला देते। ताऊजी, तुम ला दोगे, तुम्हें ले जाएंगे।

बाबू—और किसे ले जायगा ?

बालक दम-भर सोचकर बोला—बछ, औल किसी को नहीं ले जाएंगे।

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—और अपनी ताई को नहीं ले जायेगा ?

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा।

ताई जी इस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—ताई को नहीं ले जाएंगे।

ताई सुपारी काटती हुई बोलीं—अपने ताऊजी ही को ले जा। मेरे ऊपर दया ही रख।

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—ताई को क्यों नहीं ले जायेगा?

बालक—ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं कलती।

बाबू—जो प्यार करें तो ले जायेगा?

बालक को इसमें कुछ संदेह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—क्यों रे, बोलता नहीं? ताई प्यार करें तो रेल पर बिठाकर ले जायेगा?

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिला-कर स्वीकार कर लिया; परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धांगिनी जी के पास ले जाकर उनसे बोले—लो, इसे प्यार कर लो। यह तुम्हें भी ले जायगा। परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनक कर बोली—तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया।

ने तो सब चौपट कर रक्खा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायं तो काम कैसे चले। सब विश्वास पर ही बैठे रहें, आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे।

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुंह लगना ठीक नहीं। अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहां से टल गये।

(२)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनका एक छोटा भाई है। उसका नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों के परिवार एक ही घर में हैं। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है, और छोटे भाई कृष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्संतान हैं, कृष्णदास के दो सन्तानें हैं—एक पुत्र, वही पुत्र जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं और एक कन्या। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई, और उसकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान-हीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों ही बच्चे रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तान-हीनता का बड़ा दुःख है। वह दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती है। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उसकी आंखों में कांटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रक्खे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहिब के पास से उठकर अपनी मां के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—आज तुमने मनोहर को ऐसी बुरी तरह धकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल ही अमानुषिक हो उठता है।

रामेश्वरी बोली—तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रक्खा है। उस दिन उस पण्डित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्रों में सन्तान का जोग है और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताये थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है, फिर होना न होना भगवान के अधीन है।

बाबू साहब हँस कर बोले—तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री भी......क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया-भर के झूठे और धूर्त हैं। ये झूठ बोलने की ही रोटियां खाते हैं।

रामेश्वरी तुनक कर बोलीं—तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई देता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं। पण्डित

कुछ अपनी तरफ़ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं! अंग्रेज़ी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादा के ज़माने से चली आई हैं, उन्हें झूठा बताते हैं।

बाबू साहब—तुम बात समझती नहीं, अपनी ही ओंटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। सम्भव है वह सच्चा हो। परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ कर ज्योतिषी बन बैठते हैं और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?

रामेश्वरी—हूं, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो! अच्छा, एक बात पूछती हूं भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वे कुछ देर चुप रहे। पश्चात् एक लम्बी सांस लेकर बोले—भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु किया क्या जाय? जब नहीं है, और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ? इसके सिवा, जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी हो रही है; जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो

आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।

रामेश्वरी कुढ़कर बोली—तुम्हारी समझ को क्या कहूं। इसी से तो रात-दिन जला करती हूं। भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा।

बाबू साहब हँसकर बोले—अरे, तुम भी कहां की पोच बातें लाईं। नाम संतान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गये हैं, उन सब का नाम क्या उनकी सन्तान ही की बदौलत चल रहा है। सच पूछो—तो सन्तान से नाम चलने की जितनी आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की सम्भावना भी रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है, जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरिधारीलाल कितने नामी आदमी थे? उनके सन्तान कहां है? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला आ रहा है, और अभी न-जाने कितने दिनों तक चलता जायगा।

रामेश्वरी—शास्त्र में लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती।

बाबू साहब—मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम? यदि मुक्ति होना मान लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मुक्ति हो

ही जाती है ? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है। ये जितने पुत्र वाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी ?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोली—अब तुम से कौन बकवाद करे। तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।

(३)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता, किन्तु भद्दी से भद्दी और बिलकुल काम में न आने वाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता, इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आने वाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है, इसलिए कि वह अपनी है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई वस्तु से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बनाकर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब तक उसे संतोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, और प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का सा है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उसका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उसके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं, परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उसका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लाने वाला कोई नहीं। इसीलिए उसका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उसे ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं; तब उसके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी, विशेषकर उस समय उसके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थी कि उसके पति-देव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके अपने नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थी। पास ही उनकी देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़-दौड़ कर खेल रहे थे। रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हे-नन्हे मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उसके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़ कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी।

उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया, और वह भी उसी की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गई। उसने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उसने बड़ी सतृष्ण भाव से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि अपरिचित मनुष्य उसे देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उसकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहां से उठ कर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी।" कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से उछल कर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद-सी टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भौंहें तन गईं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये, और मुस्कराकर बोले—आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं। इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उसे अपनी

कमज़ोरी पर बड़ा दुख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उसकी कमज़ोरी पति पर प्रकट होगई, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—इसी लिए मैं कहता हूं कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी संतान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि इनसे स्नेह करना सीख रही हो।

यह बात बाबू साहब ने नितांत शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग्य की तीक्ष्ण गंध मालूम हुई। उसने कुढ़कर मन में कहा—इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायं, पाप कटे। आठों पहर आंखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है, छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।

रामेश्वरी जल-भुनकर बोली—मुझे क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूंगी? तुम्हीं को मुबारिक रहे! निगोड़े आप ही आ-आकर घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना भी पड़ता है। अभी परसों ज़रा यों ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैंकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं। न यों चैन है न वों चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी, मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है। न-जाने मेरी बात में कौन-सा विप घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा लगता है तो न कहा करूंगा, पर इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विपय में निगोड़े सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा। तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आंखों द्वारा निकालने लगी।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी और जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वह पति की नजर से गिरती जा रही है; तब उसके हृदय में बड़ा तूफ़ान उठा। उसने सोचा—पराये बच्चों के पीछे ये मुझ से प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बच्चे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं! दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये। न ये होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस

दिन ये मरेंगे उस दिन घी के दिये जलाऊंगी। इन्होंने ही मेरे घर का सत्यानाश कर रक्खा है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थी। उसके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उसके विचार स्वयं उसी को कष्ट-दायक प्रतीत होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए उठ कर टहलने लगी।

वह टहल ही रही थी कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उसकी भ्रुकुटी चढ़ गई; और वह छत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गई।

सन्ध्या का समय था। आकाश में रङ्ग-विरङ्गी पतङ्गें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतङ्गों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतङ्ग कट कर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक पतङ्ग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़ कर रामेश्वरी के पास आया और उसकी टांगों में लिपट कर बोला—ताई, हमें पतङ्ग मंगा दो? रामेश्वरी ने झिड़क कर कहा—चल हट, अपने ताऊ से मांग जाकर।

मनोहर कुछ अप्रतिभ-सा होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण-स्वर में कहा—ताई, पतङ्ग मंगा दो; हम भी उड़ावेंगे।

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रही। फिर उसने एक लम्बी साँस लेकर मन ही मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो आज मुझसे बढ़ कर भाग्यवान् स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़ा मारा कितना सुन्दर है और कैसी प्यारी प्यारी बातें करता है—यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लूं।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थी कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला—तुम हमें पतङ्ग नहीं मंगवा दोगी, तो ताऊ जी से कहकर तुम्हें पिटवावेंगे।

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़क कर बोली—जा, कह दे अपने ताऊ जी से। देखूं वे मेरा क्या कर लेंगे।

मनोहर भयभीत होकर उसके पास से हट आया और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतङ्गों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊजी के दुलार का फल है कि कल का छोकरा मुझे धमकाता है। ईश्वर करे कि इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से पतङ्ग कट कर उसी छत की ओर आई और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहार-दीवारी थी। जहां रामेश्वरी खड़ी हुई थी, केवल वहीं पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा

सकते थे। रामेश्वरी उस द्वार से सटी हुई खड़ी थी। मनोहर ने पतङ्ग को छज्जे पर जाते देखा। पतङ्ग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रही। मनोहर उसके पास से होकर छज्जे पर चला गया और उससे दो फीट की दूरी पर खड़ा होकर पतङ्ग को देखने लगा। पतङ्ग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर के आंगन में जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुंडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आंगन में झांका और पतङ्ग को आंगन में गिरते देख वह प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा, परन्तु घूमते समय मुंडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुंडेर आ गई। वह उसे पकड़ कर लटक गया, और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—'ताई!' रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा—उसके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायगा। यही सोच कर वह एक क्षण के लिए रुकी। उधर मनोहर के हाथ मुंडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देख कर चिल्लाया—'अरी ताई!' रामेश्वरी की आंखें मनोहर की आंखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुंह को आ गया। उसने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उसका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुंचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुंडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख

मार कर छज्जे पर गिर पड़ी।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रही। कभी-कभी वह ज़ोर से चिल्ला उठती, और कहती—देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो। कभी वह कहती—बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हां, हां, मैं चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी। इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करती।

मनोहर की टांग उखड़ गई थी। टांग बिठा दी गई थी, वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उसने पूछा—मनोहर कैसा है?

रामजीदास ने उत्तर दिया—अच्छा है।

रामेश्वरी—उसे मेरे पास लाओ।

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुंध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई। और मनोहर तो अब उसका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उसे एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

श्री विनोदशंकर 'व्यास'

आपका जन्म सन १६०३ में हुआ। काशी आपकी जन्म-भूमि है। बाल्यावस्था में आपका ध्यान पढ़ने-लिखने की ओर अधिक नहीं था। अध्ययन की अपेक्षा खेल-कूद ही आपको अधिक पसन्द थी। इसीलिए आप बहुत उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। परन्तु इस अभाव से कोई विशेष क्षति नहीं हुई। आपको भगवान् की ओर से एक अनूठी प्रतिभा मिली है, जिसके बल पर आपने आज के साहित्य में अपने लिए आदर का स्थान बना लिया है। कला की दृष्टि से आप कथा-साहित्य की 'प्रसाद धारा' से सम्बन्ध रखते हैं। प्रसाद जी के स्वर्णिम सम्पर्क से ही आपको इस दिशा में प्रेरणा और स्फूर्ति मिली है। उनकी तरह आपकी कहानियां भी भाव-प्रधान हैं। उनमें कथानक की मात्रा कम और भावों की मात्रा अधिक होती है। भाषा सीधी, सरल और मधुर होती है। 'नव-पल्लव', 'भूली बात', 'तूलिका' और 'उसकी कहानी' आदि आपके कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

बदला

(१)

देश में अकाल पड़ा। गांव-देहात उजड़ा हुआ था। दिन अंधेरी रात की तरह भयानक मालूम पड़ता था। लोग दोनों के लिए तरसते, भूख से छटपटाते और पैसे के लिए रोते थे। ओह! दैव का कितना भीषण परिहास था। आंखें धँस गई थीं, ठोकरें बैठ गई थीं और शरीर निर्बल हो गया था।

गांव के लोग कहते—ईश्वर का कोप है। बरसात आकाश की ओर देखते ही कटी, जाड़ा ठिठरते हुए कटा और गर्मी अब धूप की ज्वाला से कट रही है। कैसा अद्भुत खेल है। सचमुच अकाल था। भूमि अपना सूना आँचल फैलाये हुए बैठी थी।

वह गांव सिसक रहा था। चन्द्रमा ने झोंपड़ियों के उस टिमटिमाते हुए प्रकाश को चुरा लिया था। चांदनी अपनी छाया में बैठकर उन झोंपड़ियों से उसकी कहानी सुनती। सियार बोल रहे थे। सन्नाटा था। रजनी तांडव-नृत्य देख रही थी।

मोती अपनी उदास झोंपड़ी में पड़ा सोचता था। रात आंखों से खूब लड़ी थी। जागते ही कटी। ज़मींदार को माल-गुज़ारी देना है। खेत बेदखल हो जायगा, घर उजड़ जायगा, सब समाप्त हो जायगा।

मोती ग़रीब था सबका ताबेदार, नौकर था। वह अभागा अछूत था।

भैंस, बकरी और बैल तो कर्ज में ही नीलाम हो गये थे, खेत भी बेदखल हो गया। झोंपड़ी जर्जर हो गई थी, मोती के पास केवल लाल और सफ़ेद गाय बच गई थी। वह उसे बहुत प्यार करता था। खेत में काम करते हुए जब मोती पुकारता—'लाली!' वह दौड़ती हुई पहुँचती। पालतू कुत्ते की तरह वह गाय मोती के साथ फिरती। नौ महीने की बछिया थी, तभी से उसने उस को पाला था। इससे मोती को उसका बड़ा मोह था।

सोना को पीहर पहुंचाकर मोती बम्बई जायगा, नौकरी करेगा, पैसा पैदा करेगा, भूखों मरने से बचेगा।

रेल के टिकट के लिए रुपये न थे। मोती लाली को बेचेगा। सोना ने लाली को न बेचने का अनुरोध किया; किन्तु मोती विवश था। रुपये कहां से आते? सब कुछ चला गया था, बच गई थी लाली। बम्बई के भाड़े के लिए वह भी निकल जायगी।

अत्याचार सहन करते-करते मोती कठोर हो गया था। वह खुद बिक जाता, मगर लाली को न बेचता; किन्तु मोती सब से हाथ धो बैठा था। उसका दिल पत्थर हो गया था।

सोना का बाप एक दूसरे गांव का चौकीदार था। बस पांच बीघा भूमि थी। सोना ने वहीं चलकर रहने को कहा था। उसके पिता ने भी इस पर ज़ोर दिया था। किन्तु ससुराल की रोटी तोड़ना मोती को पसन्द न था। वह बड़ी आन का था।

सोना को पीहर पहुंचाकर मोती लौट आया। चलते समय सोना ने आंसू बहाते हुए कहा—चिट्ठी भेजना और हो सके तो साल छः महीने में चले आना।

"ईश्वर की जैसी इच्छा!" कहकर मोती चला आया।

मोती के घर में भगवानदास तिवारी का बड़ा मान था। गांव में वे बड़े सीधे, सरल ब्राह्मण थे। मोती की लाली उन्हें बड़ी पसन्द थी। मार्ग में जब कभी देखते तो उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पुचकारते। मोती जानता था, लाली उनके यहां रहेगी। अतएव लाली को लेकर मोती उनके द्वार पर पहुंचा और प्रणाम किया।

उन्होंने पूछा—कहो मोती, कैसे चले?

महाराज, सब कुछ चला गया, अब मैं भी बम्बई जा रहा हूं। मोती ने उत्तर दिया।

क्या करोगे? दिन का फेर बड़ा विचित्र होता है। ज़मींदार बड़ा दुष्ट है। अन्धेर-नगरी है। कारिन्दा जो चाहता है, करता है। ज़मींदार को अपनी मौज से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती—कहकर तिवारी जी लाली की ओर देखने लगे।

भाग्य में जो लिखा था, सो हुआ। अब आप लोगों का आशीर्वाद लेकर जाता हूं। टिकट के लिए रुपये नहीं हैं। लाली को लेकर आया हूं, २०) रुपये की ज़रूरत है। लाली आपके यहां रहेगी।—मोती ने बड़ी निराशा से कहा।

तुम्हारे ऊपर उसे तनिक भी दया न आई, उजाड़कर ही छोड़ा! कब जाओगे?—विचार करते हुए तिवारी जी ने कहा।

आज ही।

उन्होंने घर से २०) रुपये लाकर दिये। मोती रुपये लेकर लाली की तरफ़ देखने लगा। लाली भी उसकी ओर देख रही थी। वड़ा करुण दृश्य था। मोती ने लाली के गले में हाथ डालकर उसे चूम लिया, और चला गया।

कुछ दूर पर वां...आं...शब्द सुनाई पड़ा। मोती ने सोचा, लाली पुकार रही है; किन्तु हृदय पर हाथ रखकर यह कहते हुए चला गया—लाली, तुम्हारे भाग्य से मैं पैसे वाला हो जाता तो...।

मोती वरवाद हो गया, उजड़ गया!

(२)

मोती बम्बई पहुंच गया था। वह भौंचक्का होकर शहर देखने लगा। जैसे, किसी भूल-भुलैया में भटकने लगा। देहाती आदमी, किसी से परिचित न था। मोटर की 'भों-भों' और घोड़ा-गाड़ी की 'हटो-वचो' से घवड़ा उठा था। "क़हां जाय? क्या करे? नौकरी कहां मिलेगी?" ये ही प्रश्न वार-वार उठते। कई दिन वीत गये। साहस नहीं होता था, वात कैसे करे?

सन्ध्या हो चली थी। मोती भूखा था नौकरी की खोज में वह नगर से कुछ दूर चला आया था। एक जगह खड़ा होकर देखने लगा! वड़ा भारी इहाता था, उसी में गाय-भैंस वंधी थीं। उसने अपने ही जैसे मैले वस्त्रों में कुछ काम करने वालों को देखा। सलाम-वन्दगी हुई। परिचय हुआ। मोती ने

अपना अभिप्राय प्रकट किया। उसके प्रति उन लोगों की सहानुभूति हुई! उसी दिन साहब से भेंट हुई, मोती को नौकरी मिल गई।

साहब की 'डेरी' थी। दूध का व्यवसाय होता था। मोती को दूध दुहने का काम मिला था। वह इस काम में निपुण भी था। साहब के सामने उसकी परीक्षा हुई थी।

दिन-पर-दिन बीतने लगे। वह बड़े परिश्रम से अपना कार्य करता। अपने नम्र व्यवहार के कारण सब से हिल-मिल गया था। साहब उससे बड़े प्रसन्न रहते! उसका विश्वास जमता गया।

सोना का लिखवाया हुआ पत्र मिला था। मोती का हाल पूछा था, रुपये मांगे थे, और कब आवेगा, यह भी पूछा था।

मोती ने सोना को रुपये भेजे और उत्तर में लिखवाया—"मैं अब बड़े सुख से यहां हूं। साहब के पास रुपया जमा कर रहा हूं। दूध के व्यवसाय में यहां बड़ा लाभ है, मैं अच्छी तरह उसे जान गया हूं। कुछ दिन नौकरी करके रुपया जमा करूंगा। फिर खुद का कारोबार करूँगा। बड़ा लाभ होगा, तब तुमको भी बुला लूंगा।"

(३)

दो वर्ष बीत गये।

दिल्ली से मोती ने गाय और भैंसे मंगवाई। देखते-देखते उस का भाग्य चमका। सफलता से घनिष्ठता हो चली। दूध-मक्खन

और घी बेचता। उसकी आंखें खुल गईं। दानों के लिए तरसने-वाला मोती अब पैसे जोड़ने लगा।

अपने एक सम्बन्धी के साथ सोना भी बम्बई आई। मोती को अब रोटी का कष्ट न होता। बड़े सुख से दोनों का समय बीतने लगा। मोती दिन-रात अपने काम में व्यस्त रहता, किन्तु सोना को शहर का जीवन पसन्द न आया। रुपयों के लोभ से उसे सन्तुष्ट रहना पड़ा।

दस वर्ष बीत गये।

साहब अपने देश चला गया। मोती ने उसकी डेरी ख़रीद ली। वह बड़ा व्यवसायी हो गया। लेकिन बम्बई के जल-वायु से वह बराबर अस्वस्थ रहता।

सोना ने एक दिन कहा—तुम दिन-पर-दिन दुबले होते जा रहे हो। अब यहां अच्छा भी नहीं लगता। ईश्वर ने बहुत धन दे दिया। चलो, अब घर चलें; खेती करेंगे। यहां के इस जीवन में कोई सुख नहीं मालूम होता।

सोना की इस बात पर मोती कभी-कभी विचार करता। उसके मन में भी बात जम गई। एक दिन उसने भी कहा—चलो, अब यहां नहीं रहूंगा। बहुत धन लेकर क्या करना है? सचमुच वे दिन कितने अच्छे थे, जब दिन भर खेत पर काम करके सन्ध्या समय अपनी झोंपड़ी पर लौटते थे। वह तो अब सपना हो गया!

कुछ दिनों के बाद मोती ने अपना कारोबार बंद कर दिया। एक सेठ के हाथ सब बेच कर रुपये एकत्र कर लिये।

सोना ने पूछा—कुल कितना है ?

मोती ने कहा—एक लाख से कुछ अधिक !

सोना पुतली की तरह मोती की ओर देखने लगी । दोनों चल पड़े ।

(४)

बड़ी सरस सन्ध्या थी । एक युग के बाद मोती घर लौट आया था । उसके खंडहर पर अब एक सुन्दर मकान बन रहा था । बड़ा परिवर्तन हो गया था । पैसे का प्रभाव था, गांव के लोग मोती को घेरे बैठे थे । वह अपना वृत्तान्त सुना रहा था । उन्हीं लोगों की बातचीत से मोती को मालूम हुआ कि ज़मींदार पतन के मार्ग की सीमा पर पहुंच गया है ।

लीला को देख कर मोती दुखी हुआ । वह बूढ़ी हो गई थी । अब दूध नहीं देती थी । उसकी ठठरियां निकल आई थीं । मोती उसी दिन बूढ़े ब्राह्मण को रुपयों से प्रसन्न कर लाली को अपने यहां ले आया ।

आज गांव की नीलामी थी । ज़मींदारी की छावनी पर डुग्गी बज रही थी । बड़े-बड़े महाजन एकत्र हुए थे । विलासिता के पर्दे में छिपा हुआ ज़मींदार अपना नग्न दृश्य देख रहा था ।

मोती को भी समाचार मिला । वह बड़ा उदास था । नोटों का बंडल बांधकर वह निकला । सोना ने समझा—मोती नीलाम में गांव खरीदेगा । गांव के लोग भी इसका पहले से अनुमान कर रहे थे ।

मोती नीलाम की बोली सुन रहा था। पूर्व-काल के भयानक दिन उसकी आंखों के सामने फिर गये। इसका हृदय कांपने लगा। सामने ही जमींदार आंखें नीची किये बैठा था। मोती अपने को संभाल न सका, उसने तत्काल जमींदार के चरणों पर नोटों का बंडल रखते हुए कहा—मैं यह दुःख भोग चुका हूं। भगवान् न करे, किसी को यह दिन देखना पड़े। लीजिए इस से अपना गांव बचा लीजिए। इसी तरह मेरा दिन भी न बदलता। आपके कारण ही आज मैं रुपयों को जोड़ सका हूं। अतएव यह आपका ही है।

जमींदार आश्चर्य से उसे देखने लगा।

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

आप पंजाब-निवासी हैं। आपके पिता श्रीयुत डा० हीरानन्द शास्त्री केन्द्रीय सरकार के पुरातत्त्व विभाग में अत्यन्त प्रतिष्ठित अधिकारी थे। आपका जन्म सन १६०६ में कसिया, ज़िला गोरखपुर में हुआ। उन दिनों आपके पिता जी वहीं खुदाई के कार्य का निरीक्षण कर रहे थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अनेक स्थानों पर हुई। बी० एस० सी० की परीक्षा आपने लाहौर से पास की, और वहाँ आपने कुछ दिनों एफ० सी० कालेज में अवैतनिक रूप से कार्य भी किया।

आप प्रारम्भ से ही उग्रदल के राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता रहे हैं। इसी कारण आपको जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। लिखने का शौक आपको सन १६२४ से है। इस वर्ष आपकी सबसे पहली कहानी इलाहाबाद की "सेवा" पत्रिका में छपी थी। आपने उच्च कोटि की कविताओं और कहानियों का सृजन किया है। आपकी कविताओं का संग्रह 'भग्नदूत' नाम से प्रकाशित हो चुका है, दूसरा संग्रह 'विश्वप्रिया' है। 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात' आदि कई गल्प-संग्रह भी निकल चुके हैं। 'शेखर—एक जीवनी' नाम से आपने एक उपन्यास भी लिखा है।

सेव और देव

प्रोफ़ेसर गजानन पण्डित ने अपना चश्मा पोंछकर फिर आंखों पर लगाया और देखते रहे।

मोटर पर से उतरकर और सामान डाक-बंगले में भिजवा-कर उन्होंने सोचा था—अभी आराम करने की आवश्यकता है नहीं, ज़रा घूम-घामकर पहाड़ी सौंदर्य देख लें, और इसीलिए मोटर के अड्डे के धक्कम-धक्के से अलग होकर, वे इस पहाड़ी रास्ते पर हो लिये थे। छाया में जब चश्मे का कांच ठण्डा हो गया और उस पर उनके गर्म बदन से उठी हुई भाप जमने लगी, तब उन्होंने चश्मा उतार कर रूमाल से मुंह पोंछा, फिर चश्मा साफ़ करके आंखों पर चढ़ाया और फिर देखने लगे।

पहाड़ी मार्ग आगे एकाएक खुल गया था। चीड़ के वृक्ष समाप्त हो गये थे। मार्ग को पार करता हुआ एक झरना बह रहा था। उसका जितना अंश समतल भूमि में था उस पर तो छाया थी, लेकिन जहां वह मार्ग के एक ओर नीचे गिरता था, वहां प्रपात के फेन पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। ऐसा जान पड़ता था कि अन्धकार की कोख में से चांदी का प्रवाह फूट पड़ा है—या प्रकृति नायिका की कजरारी आंखों से स्नेह के गद्गद् आंसुओं की झड़ी···और उसके पार एक चट्टान के सहारे एक पहाड़ी राजपूत बाला खड़ी थी, उसकी चौंकी हुई भोली शक्ल से साफ़

दीखता था कि प्रोफ़ेसर साहब का अकस्मात् आ जाना उसे एकदम अनधिकार प्रवेश मालूम हो रहा है।

प्रोफ़ेसर साहब देहली के एक कालेज में प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व के अध्यापक हैं। वे उन थोड़े-से लोगों में से हैं, जिनका पेशा और मनोरञ्जन एक ही है—मनोरञ्जन के लिए भी वे पुरातत्त्व की ओर ही जाते हैं। यहां कुल्लू पहाड़ की सुरम्य उपत्यकाओं में भी वे यही सोचते हुए आये हैं कि यहां भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष उन्हें मिलेंगे और हिन्दू-काल की शिल्पकला के नमूने और धातु या प्रस्तर या सुधा की मूर्तियां और न जाने क्या-क्या···लेकिन इतना सब होते हुए भी सौन्दर्य के प्रति—जीते-जागते स्पन्दन-युत क्षण-भंगुर सौन्दर्य के प्रति—उनकी आंखें अन्धी नहीं हैं। बाला को वहां खड़ी देखकर, उसके पैरों के पास बहते झरने का शब्द सुनते ही उन्हें पहले तो एक हंसिनी का विचार आया, फिर सरस्वती का (यद्यपि बाला के हाथ में वीणा नहीं, एक छोटी-सी छड़ी थी) उन्होंने अपने स्वर को यथासम्भव कोमल बना कर पूछा—तुम कहां रहती हो ?

बाला ने उत्तर नहीं दिया, ससंभ्रम दृष्टि से उनकी ओर देखकर जल्दी-जल्दी पहाड़ी पर चढ़ने लगी।

प्रोफ़ेसर साहब मुस्कराकर आगे चल दिये। बालिका का भोलापन उन्हें अच्छा लगा। सोचने लगे, कितने सीधे-सादे सरल स्वभाव के होते हैं यहां के लोग! प्रकृति की सुखद गोद में खेलते हुए इन्हें न चिन्ता है, न खटका है, न लोभ, न लालच

है। अपने खाने-पीने, ढोर चराने, गाने-नाचने में दिन बिता देते हैं। तभी तो बाहर से आनेवाले आदमी को देखकर संकोच होता है। अपने-आप में लीन रहनेवाले इन भोले प्राणियों को बाहरवालों से क्या सरोकार?

आगे बढ़ते-बढ़ते प्रोफ़ेसर साहब सोचने लगे—ऐसे भले लोग न होते तो प्राचीन सभ्यता के जो अवशेष बचे हैं, वे भी क्या रह जाते? ये लोग यूरोपियन सभ्यता सीखे हुए होते तो एक दूसरे को नोचकर खा जाते, उसकी राख भी न बची रहने देते। लेकिन यहां तो फ़ाहियान के समय का ही आदर्श है, सब को अपने काम से मतलब है, दूसरे के काम में दखल देना, दूसरे के लाभ की ओर दृष्टि डालना महापाप है। लोग ढोर चरने छोड़ देते हैं, शाम को ले आते हैं। कभी चोरी नहीं, शिकायत नहीं। खेती खड़ी है, कोई पहरेदार नहीं। मजाल क्या कि एक भुट्टा भी चोरी हो जाय। मेरे विचार में तो अगर मैं एक चवन्नी यहां राह में फेंक दूं तो कोई उठायेगा भी नहीं। ये सोचेंगे कि न जाने किसकी है और कौन लेने आये।

रास्ता अब फिर घिर गया था, लेकिन चीड़ के दीर्घकाय वृक्षों से नहीं; अब उसके दोनों ओर सेब के छोटे-छोटे लचीले गातवाले पेड़, डार-डार पर लदे फलों के कारण मानो विनय से झुके हुए—क्योंकि जहां सार होता है, वहां विनय भी अवश्य होता है, क्षुद्र व्यक्ति ही अविनयी हो सकता है—और कभी-कभी वायु से झूम-से जाते हुए कुल्लू के जगत्-प्रसिद्ध सेबों की प्रशंसा प्रोफ़ेसर साहब ने सुन ही रक्खी थी, कई बार मंगाकर सेब

(२)

प्रोफ़ेसर साहब एक गांव के पास आ पहुंचे। अनुमान से उन्होंने जाना कि यह 'मनाली' गांव होगा और उन्हें याद आया कि यहां पर एक दर्शनीय प्राचीन मन्दिर है। गांव के लोगों से पता पूछते हुए वे मनु के मन्दिर में पहुंच ही गये। मन्दिर छोटा था, सुन्दर भी नहीं था, लेकिन संसार-भर में मनु का एक-मात्र मन्दिर होने के नाते वह अपना अलग महत्त्व रखता था। प्रोफ़ेसर साहब कितनी ही देर तक एकटक उसकी ओर देखते रहे, यहां तक कि दहेली पर बैठे हुए बूढ़े पुजारी का ध्यान भी उनकी ओर आकृष्ट हो गया; आने-जाने वाले तो खैर देखते ही थे।

प्रोफ़ेसर साहब ने आनन्दित हृदय से पूछा—आस-पास और भी कोई मन्दिर हैं।

पास खड़े एक आदमी ने कहा—नहीं बाबूजी, यहां कहां मन्दिर।

यहां मन्दिर नहीं? अरे भले आदमी, यहां तो सैकड़ों मन्दिर होने चाहिएं। यहां पर—

बाबूजी, यहां तो लोग मन्दिर देखने आते ही नहीं। कभी-कभी कोई आता है तो यह मनूरिखि का मन्दिर देख जाता है, बस और तो हम जानते नहीं।

पुजारी ने खाँसते हुए पूछा—कौन-सा मन्दिर देखियेगा बाबू?

कोई और मन्दिर हो, आस-पास के सब मन्दिर-मूर्तियां मैं देखना चाहता हूं।

पुजारी ने थोड़ी देर सोचकर कहा—और तो कोई नहीं, उस चोटी के ऊपर जंगल में एक देवी का थान है। यहां पहले कभी एक किला भी था, जिसके अन्दर देवी के थान में पूजा होती थी, पर अब तो उसके कुछ पत्थर ही पड़े हैं। वहां अब कोई जाता नहीं। अब उस जंगल में भूत बसते हैं।

प्रोफ़ेसर साहब कुछ मुस्कराये, लेकिन बोले—कैसे भूत ?

कहते हैं कि पुराने राजाओं के भूत रहते हैं—वे राजा बड़े प्रतापी थे।

अरे, उन भूतों से मेरी मित्रता है—कहकर प्रोफ़ेसर साहब ने मार्ग पूछा, और क्षण-भर सोचकर पहाड़ पर चढ़ने लगे। पुजारी ने 'पास ही' बताया था, तो मील-भर से अधिक नहीं होगा, और अभी तीन बजे हैं, शाम होने तक मजे में बंगले पर पहुंच जाऊंगा।

जंगल का रूप बदलने लगा। बड़े-बड़े पेड़ समाप्त हो गये। अब छोटी-छोटी झाड़ियां ही दीख पड़ने लगीं। यह पहाड़ का वह मुख था जो वायु के थपेड़ों से सदा पिटता रहता था—जाड़ों में तो हिम की चोटें यहां लगे हुए किसी पेड़-पौधे को कुचल डालतीं! प्रोफ़ेसर साहब को समझ आने लगा कि यह ऊंचा शिखर किले के लिए बहुत उपयुक्त है, और यह भी जान गये कि यहां बना हुआ किला उजड़कर कितनी जल्दी निरवशेष हो जायगा।

झाड़ियां भी छोटी होती गईं। घास की बजाय अब पथरीली पृथ्वी आई, जिसमें किसी तरफ़ कोई बनी हुई पगडण्डी

गर्भ, पूत-रक्त से स्नान करके अपना दैवी सौन्दर्य निखारा होगा, और अब कितने बरसों से इन रेंगते हुए कीड़ों की लम्बी-लम्बी जिज्ञासु मूंछों की ग्लानि-जनक गुदगुदाहट सह रही होगी······ उफ़, देवत्व की कितनी उपेक्षा! मानव नश्वर है, वह मर जाय और उसकी अस्थियों पर कीड़े रेंगे, यह समझ में आता है, लेकिन देवता...पत्थर जड़ है। उसका महत्त्व कुछ नहीं! लेकिन मूर्ति तो देवता की है, देवत्व की, चिरन्तनता की निशानी तो है। एक भावना है, पर भावना आदरणीय है। क्या यह मूर्ति यहीं पड़े रहने के योग्य है? इन कीड़ों के लिए जिनके पास श्रद्धा को दिल नहीं, पूजने को हाथ नहीं, देखने को आंखें नहीं, छूने को त्वचा तक नहीं, केवल टटोलने को ये हिलती हुई गन्दी मूंछें हैं···यह मूर्ति कहीं ठिकाने-से होती—

न जाने क्यों प्रोफ़ेसर साहब ने एकाएक मन्दिर-द्वार से हटकर चारों ओर घूमकर देखा, फिर देखा, न जाने क्यों आस-पास निर्जन पाकर आश्वासन की सांस ली, और फिर वहीं आ खड़े हुए।

मूर्ति गणेश की भी बुरी नहीं, लेकिन वह उतनी पुरानी नहीं, न उतनी सुन्दर शैली पर निर्मित है। पीतल की मूर्ति में कभी वह बात आ ही नहीं सकती जो पत्थर में होती है। देवी की उस मूर्ति को देखते-देखते प्रोफ़ेसर साहब के हृदय की स्पन्दन-गति तीव्र होने लगी—इतनी सुन्दर जो थी वह! वे फिर आगे बढ़कर उसे उठाने को हुए, लेकिन फिर उन्होंने बाहर झांककर देखा, पर वहां कोई न था, कोई आता ही नहीं उस

बेचारे उजड़े हुए मन्दिर के पास—किसे परवाह थी निर्जन की अपनी दीप्ति से जगमग करती हुई उस देवी की ! देवी के प्रति दया और सहानुभूति से आनन्दित होकर प्रोफ़ेसर साहब फिर भीतर आये, लपक कर मूर्त्ति को उठाया और अपने धड़कते हुए हृदय को शान्त करने का प्रयत्न करते हुए एकटक उसे देखने लगे।

दिल इतना धड़क क्यों रहा है ? प्रोफ़ेसर साहब को ऐसा लगा जैसे वे डर रहे हैं। फिर उन्हें इस विचार पर हँसी-सी भी आ गई। डर किससे रहा हूं मैं ? प्रेतों से ? मैं भी क्या यहां के लोगों की तरह अन्ध-विश्वासी हूं जो प्रेतों को मानूंगा ? कविता के लिहाज़ से भले ही मुझे यह सोचना अच्छा लगे कि यहां प्रेत बसते हैं, और रात को जब अंधेरा हो जाता है, तब इस बन्द मन्दिर में आकर देवी के आसपास नाचते होंगे···देवी है, शिव है, उनके गण भी तो होने चाहिएं। रात को मूर्तियों को घेर-घेरकर नाचते होंगे और इन न जाने कब के बलि-पशुओं के भस्मीभूत सींगों से प्रेतोचित प्रसाद पाते होंगे ! और दिन में—मन्दिर की कन्दराओं में, दरारों में छिपकर अपनी उपास्य मूर्तियों की रक्षा करते होंगे, देखते होंगे कि कौन आता है, क्या करता है···

उन्होंने फिर मूर्त्ति को रख दिया और लौट कर देखा। उन्हें एकाएक लगा जैसे उस अखण्ड नीरवता में कोई छाया-सी आकर उनके पीछे से भागकर कहीं छिप गई है। प्रेत ! वे फिर एक रुकती-सी हँसी हँसकर बाहर निकल आये। इस घोर निर्जन

ने मेरे शहर के शोर से उलझे स्नायुओं को और उलझा दिया है। इसी नतीजे पर वे पहुंचे, और फिर मन्दिर की ओर देखने लगे।

दिन ढल रहा था। मन्दिर की लम्बी पड़ती छाया को देखकर प्रोफ़ेसर साहब को ऐसा लगा, मानो वह दूर हटती-हटती भी मन्दिर से अलग होना नहीं चाहती, उससे चिपटी हुई है, मानो उसकी रक्षा करना चाहती हो, मानो वह मन्दिर और उसकी मूर्त्तियां उस छाया की गोद के शिशु हों। प्रोफ़ेसर साहब का मन भटकने लगा।

···इजिप्ट के पिरामिड भी इतने ही उपेक्षित पड़े थे। यह मन्दिर आकार में बहुत छोटा है, वे विराट थे; लेकिन उपेक्षा तो वही थी। उनमें भी न जाने क्या-क्या ख़ज़ाने ऐसे ही पड़े थे जैसे यहां पर मूर्त्ति। उनके बारे में अज्ञान ने क्या-क्या बातें फैला रक्खी थीं, भूत-प्रेतों की। अन्त में पुरातत्त्वविद् साहस करके वहां गये, उन्होंने उनमें प्रवेश किया और अब संसार के बड़े-बड़े संग्रहालयों में वे ख़ज़ाने पड़े हैं और महत्त्व के अनुरूप सम्मान पाते हैं। फ़िलाडेलफ़िया के अजायबघर में नूतां खामेन की वह स्वर्णमूर्त्ति—उस नौ सेर खरे सोने का ही मूल्य तीन हज़ार रुपये होगा—फिर प्राचीनता का मूल्य अलग और उसमें जड़े हुए हीरे जवाहरात का अलग···कुल मिलाकर लाखों रुपये की चीज़ है वह···

वे फिर भीतर गये। मूर्त्ति उठाई और रखकर बाहर आ

गये ! उन्होंने फिर सब ओर देखा। कोई नहीं था। सूर्य भी एक छोटे-से बादल के पीछे छिप गया था।

एकाएक उनकी घबराहट का कारण स्पष्ट हो गया। कुछ ठण्ड-सी जानकर उन्होंने जल्दी से ओवरकोट पहना और फिर भीतर चले गये।

मूर्त्ति के उपयुक्त यह स्थान कदापि नहीं है। मन्दिर है पर जहां पूजा ही नहीं होती वह कैसा मन्दिर ! और गांववाले परवाह कब करते हैं ? यहां मन्दिर भी गिर जाय तो शायद महीनों उन्हें पता भी न लगे—कभी किसी भटकी हुई भेड़-बकरी के अन्वेषण में आया हुआ गडरिया आकर देखे तो देखे। यहां मूर्त्ति को पड़ा रहने देना भूल नहीं, पाप है।

इस निश्चय पर आकर भी उन्होंने एक बार बाहर आकर दृष्टि डाली कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है, तब लौट कर जल्दी से मूर्त्ति कोट के भीतर छिपाई, किवाड़ को यथास्थान खड़ा किया, बूट हाथ में उठाये और बिना लौटकर देखे भागते हुए उतरने लगे।

जब देवी का स्थान और उसके ऊपर खड़े दोनों पेड़ों की फुनगी तक आंखों की ओट हो गई, तब उन्होंने रुककर बूट पहने, और फिर धीरे-धीरे उतरते हुए ऐसा मार्ग खोजने लगे जिससे गांव में से होकर न जाना पड़े, शिखर के दूसरे मुख से ही वे उतर सकें।

(३)

गांव मील-भर पीछे छूट गया था। सेबों के बगीचे फिर

आरम्भ हो गये थे। कहीं-कहीं कोई मधु पीकर अघाया हुआ मोटा-सा काला भौंरा प्रोफ़ेसर साहब के कोट से टकरा जाता था, कभी कोई तितली उनका मार्ग काट जाती थी। सूर्य की धूप लाल हो गई थी—ये सब अपना-अपना ठिकाना खोज रहे थे। प्रोफ़ेसर साहब भी अपने ठिकाने की ओर जा रहे थे। उनका हृदय आह्लाद से भर रहा था। उनका पहला ही दिन कितना सफल हुआ था! कितना सौन्दर्य उन्होंने देखा था—और कितना सौन्दर्य, बहुमूल्य सौन्दर्य उन्होंने पाया था। कुल्लू का अनिर्वचनीय सौन्दर्य! वास्तव में वह देवताओं का अञ्चल है···

उस समय प्रोफ़ेसर साहब के भीतर तो कुल्लू-प्रेम का ही नहीं, मानव-प्रेम का—संसार-भर की शुभेच्छा का रस उमड़ रहा था, उसकी बराबरी कुल्लू के रस-भरे सेब भी क्या करते! प्रोफ़ेसर साहब की स्नेह उड़ेलती हुई दृष्टि के नीचे वे सेब मानो अधिक पक कर और रस से भर जाते थे, उनका रंग कुछ और लाल हो आता था। कितने रस-गद्गद् हो रहे थे प्रोफ़ेसर साहब!

सेब के उद्यान से फिर कहीं धमाका हुआ। प्रोफ़ेसर साहब ने देखा—एक लड़का उन्हें देखकर शाखा से कूदा है, उसके कूदने के धक्के से फलों की लदी हुई शाखा भी टूटकर आ गिरी है।

प्रोफ़ेसर साहब ने रोब के स्वर में कहा—क्या कर रहा है?

लड़के ने सहमकर उनकी ओर देखा—वही लड़का था! हाथ का थोड़ा सा खाया हुआ सेब वह कोट के गुलूबन्द के भीतर छिपा रहा था।

प्रोफ़ेसर साहब के तन में आग लग गई। लपक कर बालक

के कोट का गला उन्होंने पकड़ा, झटका देकर सेव बाहर गिराया, दो तमाचे उसके मुंह पर लगाते हुए कहा—बदमाश! फिर चोरी करता है! अभी मैं डांट कर गया था, बेशर्म को शर्म भी नहीं आती।

उन्होंने लड़के की छाती में धक्का दिया। वह लड़खड़ाकर कुछ दूर हट गया, गिरने को हुआ, सँभल गया; फिर एक हाथ से कोट को वहीं से थामकर जहां प्रोफ़ेसर साहब ने धक्का दिया था, एक दर्दभरी चीख़ मारकर रो उठा।

चीख़ सुनकर प्रोफ़ेसर साहब को कुछ शान्ति हुई, कुछ आनन्द-सा हुआ। विद्रूप से उन्होंने कहा—क्यों, दुखती है छाती? और छिपाओ सेव वहां पर!

बात में भरे हुए तिरस्कार को और तीखा बनाने के लिए उनके हाथ ने उसका अनुकरण किया, उठकर तेज़ी से प्रोफ़ेसर साहब के ओवरकोट के काल में घुसा।

एकाएक प्रोफ़ेसर साहब पर मानो गाज गिरी। एक चौंधिया देने वाला आलोक क्षण-भर उनके आगे चमककर एक वाक्य लिख गया—इसने तो सेव चुराया है, तुम देवस्थान लूट लाये।

सहमे हुए स्तम्भित-से प्रोफ़ेसर साहब क्षण-भर खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उलटे पांव गांव की ओर चल पड़े।

तर्क उन्हें सुझाने लगा कि यह मूर्खता है, उनकी युक्तियां बिलकुल ग़लत हैं, तुलना आधार-हीन है; लेकिन वे न जाने कैसे इस सब बुद्धि की प्रेरणा के प्रति बहरे हो गये थे। जैसे-जैसे कोलाहल बढ़ने लगा, उसे रोक रखने के लिए उनकी गति भी

तीव्रतर होती गई। जब वे आंधी की तरह गांव में से गुज़रे, तब घर जाता हुआ प्रत्येक व्यक्ति कुछ विस्मय से उनकी ओर देखता और उन्हें ऐसा लगता कि वे उनकी छाती की ओर ही देख रहे हैं, जैसे उस काले ओवरकोट की ओट में छिपी हुई देव-मूर्त्ति को, और उससे पीछे भी प्रोफ़ेसर साहब के हृदय में बसे हुए पाप को वे खूब अच्छी तरह जानते हैं।

अंधेरा होते-होते वे मन्दिर में पहुंचे। किवाड़ एक ओर पटककर उन्होंने मूर्त्ति को यथास्थान रखा। लौटकर चलने लगे; तो आस-पास के वृक्ष अंधेरे में और भयानक हो गये। नीरवता ने उन्हें फिर सुझाया कि वे एक निधि को नष्ट कर रहे हैं, लेकिन जाने क्यों उनके मन में शान्ति उमड़ आई। उन्हें पता लगा कि दुनिया बहुत ठीक है, बहुत अच्छी है।

श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'

आप एक भावुक कवि और यशस्वी कहानी-लेखक हैं। प्रसाद जी की तरह आपकी कहानियों में कवित्व का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। आपकी भाषा भावमय और शैली अत्यन्त रोचक और स्पर्शी होती है। करुण रस की अभिव्यक्ति में जितनी आपको सफलता मिली है उतनी अन्य लेखकों को नहीं। वेदना और अभाव का चित्रण करने में आप सिद्धहस्त हैं। 'किसलय', 'मालिका', 'मृदुदल', तथा 'मधुमयी' आदि आपकी कहानियों के कई संग्रह निकल चुके हैं। प्रस्तुत कहानी में त्याग और मातृ-भक्ति का सुन्दर निदर्शन किया गया है।

कवि और गल्प-कार के अतिरिक्त आप एक अच्छे आलोचक भी हैं। आपकी 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' नाम की आलोचनात्मक कृति का अच्छा आदर हुआ है।

सपूत

तारा के पास विपदाओं के सिवा और कोई सम्पत्ति न थी। वह अनाथिनी थी, विधवा थी, अन्न और वस्त्र के अभाव में जीवन बितानेवाली एक मज़दूरिन थी; पर उसका हृदय महासागर की तरह गम्भीर और आकाश की तरह विस्तृत था। किसी ने उसके चेहरे पर कभी विषाद की छाया तक न देखी थी। कभी उसने किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया था। जीवन की लड़ाई से उकता कर कभी उसने निराशा की आहें न भरी थीं। जिस परिस्थिति में पड़ कर कायर लोग आत्म-हत्या कर लिया करते हैं उसी परिस्थिति में रह कर वह अधिक से अधिक दिनों तक जीने की कामना किया करती। क्यों? इस लिए कि उसके जीवन का एक उद्देश्य था। वह चाहती थी कि अपने इकलौते पुत्र दयानिधि के जीवन का पूर्ण उत्कर्ष देख कर उसकी मृत्यु हो। सब कुछ भूल कर वह उसी के जीवन-निर्माण में लगी हुई थी। यही उसका व्रत था। इसी व्रत की साधना में वह दिन-रात डूबी रहती थी। इसी साधना ने उसकी कर्त्तव्य-शक्ति को अटूट बना दिया था। इसी कर्त्तव्य-शक्ति के सहारे वह जीवन-संग्राम में वीरतापूर्वक लड़ रही थी।

मज़दूरी करके वह अपने बेटे को पढ़ा रही थी। आप भूखी रह जाती, पर दयानिधि को दिन में तीन बार अवश्य खिलाती।

उसके अपने तन पर वस्त्र है या नहीं, इसकी उसे कोई परवाह नहीं, पर बेटे के शरीर पर कभी मैला वस्त्र न रहने देती। पुत्र की सुख-सुविधा के लिए वह जो कुछ कर सकती थी, करती। पर साथ ही इस बात का भी ध्यान रखती कि उसके दुलार का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है? उसके अध्ययन और आचरण की निगरानी करते समय उसकी प्यार की आँखें प्रभुत्व के प्रकाश से चमकने लगती थीं। उस समय वह माता से पिता बन जाती थी।

(२)

माता की तपस्या व्यर्थ नहीं गई। दयानिधि बड़ा ही अच्छा लड़का निकला। स्कूल भर में उस जैसा सौम्य, सुशील और कर्तव्य-परायण बालक कोई था ही नहीं। उसकी गम्भीरता पर सभी मुग्ध थे। उसकी अध्ययनशीलता का अनुकरण करने के लिए उसके सहपाठी तरसते रहते थे। उसका चरित्र औरों के लिए आदर्श था। यह सब तो था, पर उसके हृदय के भीतर एक प्रकार की हलचल मची रहती थी। अब उसे अच्छा नहीं मालूम होता था कि उसकी मां उसके लिए मेहनत-मजदूरी करे और वह उसके पसीने की कमाई पर बाबू बन कर रहे। वह बहुत ही उदास रहने लगा।

एक दिन तारा पूछ बैठी—तुम्हारा जी अच्छा नहीं है क्या, बेटा?

बेटा कुछ उत्तर न दे सका। उसकी आंखें डबडबा आईं।

क्यों बेटा ? क्या हुआ ?—कह कर विधवा ने अपने सर्वस्व को छाती से चिपका लिया।

दयानिधि सिसकने लगा।

तारा ने व्याकुल होकर पूछा—बताओ बेटा ?

दयानिधि अपना असली दुःख छिपाते हुए बोला—मां ! मुझे कुछ नहीं हुआ है।

फिर रो क्यों रहे हो बेटा ?

यही सोच कर कि अगर तुम न रहो······

तारा ने बीच ही में पुत्र के मुख पर हाथ रख दिया और कहा—छिः ! यह सब भी कोई सोचा करता है ! पागल हो गये हो ! तुम्हारे रहते मेरे पास मौत आएगी और मैं चली जाऊंगी। तुम्हें छोड़ कर ! ना, ना, बेटा, ऐसी बातें वे नहीं सोचा करते जिन्हें जीवन की लड़ाइयां लड़नी हैं। मरने का भय आदमी को कायर बना देता है। मैं जीऊंगी और लाख बरस तक जीऊंगी। ऐसी बात फिर कभी न सोचना। यह मर्दानगी की बात नहीं है।

इसके आगे दयानिधि कुछ न बोल सका। माता की यह ओज-भरी वाणी सुन कर उसकी सजल आंखें एक अलौकिक ज्योति से चमक उठीं।

(३)

रात के बारह बज गये और दयानिधि अभी तक घर नहीं आया। तारा की बेचैनी पल-पल पर बढ़ रही थी। कभी ऐसा हुआ ही नहीं था। इस अनहोनी-सी बात ने विधवा के हृदय में

अशान्ति और आशंका की सृष्टि कर दी। व्याकुल होकर वह आंगन से बाहर निकलने ही वाली थी कि दयानिधि आ गया।

मां ने शासन के स्वर में पूछा—कहां गया था?

सिनेमा में—बेटे ने धीरे से उत्तर दिया।

क्या?—मां ने आश्चर्य-भरे क्रुद्ध स्वर में पूछा।

सिनेमा देखने नहीं गया था। मां!—दयानिधि कुछ भयभीत-सा होकर विनम्र स्वर में बोला—मैंने आज से वहां टिकट बेचने की नौकरी कर ली है।

मां ने पुत्र को छाती से लगाकर सजल स्वर में पूछा—यह क्यों बेटा?

इसीलिए मां—उसने उत्तर दिया—कि अब तुम्हारा कष्ट मुझ से देखा नहीं जाता अब तुम्हें मेहनत-मजदूरी न करने दूंगा। मेरी इसी नौकरी के रुपयों से दोनों का अच्छी तरह निर्वाह हो जायगा।

और तुम्हारा लिखना-पढ़ना?—मां ने विह्वल होकर पूछा।

उसमें कोई अन्तर न पड़ेगा मां!—दयानिधि ने विश्वस्त वाणी से उत्तर दिया—क्लास में तुम्हारा बेटा किसी से पीछे न रहेगा। रात में नौकरी करूंगा, दिन भर खूब पढ़ूंगा।

पुत्र की इस आत्म-निर्भरता का गौरव अनुभव करके मां की छाती गर्व से, उल्लास से और आशा से फूल उठी। उसने स्नेहविगलित स्वर में कहा—चलो बेटा, भोजन कर लो।

(४)

दयानिधि एन्ट्रेन्स की परीक्षा दे रहा था। अभी-दो-तीन परचे बाक़ी थे। सब का विश्वास था कि वह प्रथम श्रेणी में तो पास होगा ही, साथ ही समूचे प्रान्त के विद्यार्थियों में प्रथम रहेगा और उसे कई विषयों में विशेषता भी मिलेगी। पर यह विश्वास अपना बुढ़ापा न देख सका, भरी जवानी में मर गया। स्कूल के प्रधानाध्यापक ने उस दिन देखा कि दयानिधि परीक्षा-भवन में नहीं है। परचे बंट चुके थे। वे दौड़ कर दयानिधि के घर पहुंचे। वहां जाकर देखा, वह अपने मां की सेवा कर रहा है। उस बेचारी को उस समय हैज़ा हो गया था और वह बेचैनी में तड़प रही थी।

प्रधानाध्यापक ने घबरा कर कहा—तुम परीक्षा देने जाओ, मैं इनके पास एक आदमी भेज देता हूं।

दयानिधि ने आंखों में आंसू भर कर सिर हिला दिया, जिस का अर्थ था—नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

अपनी, हमारी और स्कूल की प्रतिष्ठा बचा लो!

प्रधानाध्यापक ने कहा—जाओ, तुम परीक्षा दे आओ, मैं यहां रहता हूं।

जी, नहीं—दयानिधि आंखों में आंसू भर कर दृढ़तापूर्वक बोला—"जिस मां की बदौलत मैं यह प्रतिष्ठा बचाने लायक़ हो सका हूं, उसे इस समय पल भर के लिए भी नहीं छोड़ सकता। यह प्रतिष्ठा फिर कभी बचा लूंगा—इस समय तो मुझे अपनी मां को बचाने की चिन्ता है।

प्रधानाध्यापक सब तरह से कह कर हार गये, पर वह मां के पास से न हटा। अपने छात्र के व्यक्तित्व की यह महानता देख कर उन्हें मन ही मन इतनी प्रसन्नता हुई, जितनी शायद उसके परीक्षा में सर्व-प्रथम होने पर भी न होती।

(५)

उसकी मां भी बच गई और अगले साल उसने अपनी, अपने अध्यापकों की और अपने स्कूल की प्रतिष्ठा भी बचा ली। अब वह कॉलेज का सम्मानित विद्यार्थी था, अपने नगर का एक आदर्श नवयुवक।

उसी की बिरादरी के राजा रामचरण जो नगर के एक बहुत बड़े रईस थे। उनके हां कोई सन्तान न थी। दयानिधि को वे गोद लिया चाहते थे। इसी उद्देश्य से एक दिन वे तारा के पास पहुंचे। उन्होंने उस विधवा को बड़ी विनती की। उसने अपने पुत्र को पास बुला लिया और कहा—सुनते हो, राजा साहब क्या कहते हैं?

सुनना नहीं चाहता—दयानिधि ने रुखाई से उत्तर दिया।

क्यों? माता ने मन ही मन प्रसन्न होकर, पुत्र का मन टटोलने के लिए कहा—इसमें हर्ज क्या है? इनकी बात मान लो, मुझे बड़ी खुशी होगी।

दयानिधि आंखों में आंसू भर कर माता के पैरों पर गिर पड़ा और बोला—नहीं मां! ऐसा न कहो। इसी झोंपड़ी में रह कर तुम से जो कुछ मिला है, मिलता है और मिलेगा, वह

राजा साहब के महलों में तो क्या, स्वर्ग में भी दुर्लभ है ! मुझे कमी किस चीज़ की है ? धन के लोभ में पड़ कर मैं नक़ली मां-बाप के साथ स्नेह का ढोंग करूं, यह तो इस जीवन में मुझ से होने का नहीं। भीख मांग कर खाऊंगा, भूखों मरूंगा, पर इस झोंपड़ी को छोड़ कर, तुम से अलग हट कर, कहीं न जाऊंगा।

गर्व और उल्लास से तारा का अन्तस्तल नाच उठा। उसने बेटे को छाती से लगा लिया और गद्‌गद् होकर कहा—राजा साहब ! ऐसा सपूत भला मैं किसी को कैसे दे दूं ?

राजा साहब निराश होकर लौट आये। रह-रह कर उनके मन में उठ रहा था—आह ! अगर मुझे भी भगवान् एक ऐसा ही सपूत दे देते !

श्री जैनेन्द्र कुमार

(जन्म सन १९०५)

आप देहली में निवास रखते हैं। यहां के साहित्यिक क्षेत्र में आपका बड़ा मान है। आपकी रचनाएं बहुत आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। आपका जन्म सन १९०५ में हुआ।

हिन्दी के कथा-साहित्य में आपका अन्यतम स्थान है। आप की कला, शैली और संविधान पर पश्चिम का प्रभाव स्पष्ट है। पात्रों के विकास में उनके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों के विश्लेषण में आप बहुत गहरा जाना पसन्द करते हैं। विचारों का वेग आपका इतना प्रबल रहता है कि लेखनी उनका सदा साथ नहीं दे पाती। इन कारणों से आपकी शैली कुछ उलझी-सी और दुरूह रहती है। आप एक गम्भीर विचारक हैं, परन्तु कहीं कहीं दार्शनिकता का मोह आपकी कहानियों को व्याख्यान-सा बना देती है। कुछ भी हो, आपकी प्रतिभा नितान्त मौलिकता लिये हुये है। कुछ आलोचकों की सम्मति में तो आपकी कृतियां एकदम बहुत ऊंची हैं। उनके विचार से तो श्री प्रेमचन्द जी के बाद हिन्दी में जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति आपने ही की है।

वातायन, स्पर्द्धा, फांसी आदि आपकी कहानियों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपने उच्च कोटि के उपन्यास भी लिखे हैं। 'परख' नाम के उपन्यास पर हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद की ओर से आपको ५००) का पारितोषिक मिल चुका है।

अपना-अपना भाग्य

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की बेंच पर बैठ गये।

नैनीताल की सन्ध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे-से, भाप-से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अंधियारी से रङ्ग कर कभी वे पीले दीखते; कभी सफ़ेद और फिर ज़रा देर में अरुण पड़ जाते, जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलो का मैदान फैला था। सामने अंग्रेज़ों का एक प्रमोद-गृह था, जहां सुहावना, रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियां अपने सफ़ेद पाल उड़ाती हुई, एक-दो अंग्रेज़ यात्रियों को लेकर, इधर से उधर खेल रही थीं और कहीं कुछ अंग्रेज एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर अपनी सुई-सी शक्ल की डोंगियों को मानो शर्त बाँध कर सरपट दौड़ा रहे थे। नदी-किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी पानी में डाले धैर्य के साथ एकाग्र होकर मछली-चिन्तन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लॉन में बच्चे किलकारियां भरते हुए हाकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली-गलौच भी जैसे खेल का अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना, वे बालक

अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल, और समूची विद्या लगाकर मानों खतम कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का खयाल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की सम्पूर्ण सचाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरत प्रवाह आ और जा रहा था। उसका न ओर था न छोर। यह प्रवाह कहां जा रहा था और कहां से आ रहा था, कौन बता सकता है? सब उमर के, सब तरह के लोग उसमें थे। मानों मनुष्यता के नमूने का बाज़ार, सजकर सामने से इठलाता निकल चला जा रहा हो।

अधिकार-गर्व में तने अंग्रेज़ उसमें थे, और चिथड़ों से सजे घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचल कर शून्य बना लिया था, और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये थे।

भागते, खेलते, हँसते, शरारतें करते, लाल-लाल अंग्रेज़ बच्चे थे और पीली-पीली आंखें फाड़े, पिता की उङ्गली पकड़ कर चलते हुए अपने हिन्दोस्तानी नौनिहाल भी थे।

अंग्रेज़ पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हँस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुज़ुर्गी को अपने चारों तरफ़ लपेटे धन-सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अंग्रेज़ रमणियां थीं जो धीरे नहीं चल सकती थीं, तेज़ चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट होती थी, न हँसने में

लाज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़ों पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़े के साथ ही साथ ज़रा जी होते ही किसी हिन्दुस्तानी पर भी कोड़े फटकार सकती थीं। वे दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निश्शङ्क, निरापद, इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर से चली जा रही थीं।

उधर हमारी भारत की कुल-लक्ष्मियां, सड़क के बिलकुल किनारे-किनारे, दामन बचाती और सम्हालती हुईं, साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमट कर लोक-लाज, सतीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर; सहमी-सहमी धरती में आंखें गाड़े, क़दम-क़दम बढ़ रही थीं।

घण्टे के घण्टे सरक गये। अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल सफ़ेद होकर जम गये। मनुष्यों का यह तांता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्के-दुक्के आदमी सड़क कर छतरी लगा कर निकल रहे थे। हम वहीं-के-वहीं बैठे थे। सरदी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिर कर देखा। यह लॉन वर्फ की चादर की तरह बिलकुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था।

यह सन्नाटा था। नैनीताल की बिजली की रोशनी दीपमालिका-सी जगमगा रही थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी। और दर्पण-सा कांपता हुआ लहरें लेता हुआ यह जल उन प्रतिबिम्बों को सौ-गुना हज़ार-गुना करके उनके प्रकाश को

मानों एकत्र और जमाकर व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशनी तारों-सी जान पड़ती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सब को ढक दिया। रोशनी मानों मर गई। जगमगाहट लुप्त हो गई! वह काले-काले भूत-से पहाड़ भी उस सफेद पर्दे के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानो यह घनीभूत प्रलय था। सब कुछ इस घनी, गहरी सफ़ेदी में दब गया, जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैल कर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया। ऊपर, नीचे, चारों तरफ़ वह निर्भेद्य, सफ़ेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कोहरा हमने कभी न देखा था। टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिलकुल निर्जन था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उस बृहदाकार, शुभ्र शून्य में कहीं से ग्यारह बार टन-टन हो उठा जैसे, कहीं दूर कब्र में से आवाज़ आ रही हो।

हम अपने अपने होटलों के लिए चल दिये।

रास्ते में मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील-मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवर-कोट तर हो गये थे। बारिश नहीं मालूम होती थी। सरदी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कम्बल होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिलकुल किनारे एक बैंच पड़ी थी। मैं जी

में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुंच कर, इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा, गरम बिस्तर में छिपकर सो रहना चाहता था। पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी और कब थमेगी—इसका क्या कुछ ठिकाना है! और वह कैसी, क्या होगी—इसका क्या कुछ अन्दाज़ है? उन्होंने कहा—आओ, ज़रा यहां बैठें।

हम उस टपकते कुहरे में रात को ठीक एक बजे, तालाब के किनारे की उस भीगी, बर्फ़ीली, ठण्डी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

पांच-दस-पन्द्रह मिनट हो गये। मित्र के उठने का इरादा न मालूम हुआ। मैंने झुंझला कर कहा—चलिए भी...

अरे, ज़रा बैठो...

हाथ पकड़ कर ज़रा बैठने के लिए जब ज़ोर से बैठा लिया गया, तो और चारा न रहा—सनक से छुटकारा पाना आसान न था, और यह ज़रा बैठना भी ज़रा न था।

चुपचाप बैठे तङ्ग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले—देखो, वह क्या है?

मैंने देखा, कुहरे की सफ़ेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली-सी मूर्ति हमारी तरफ़ बढ़ी आ रही थी। मैंने कहा—होगा कोई।

तीन गज़ की दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का, सिर के बढ़े-बढ़े बाल खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर हैं, नंगे सिर, एक मैली-सी कमीज़ लटकाये है।

पैर उसके न जाने कहां पड़ रहे थे, और वह न जाने कहां जा रहा था—कहां जाना चाहता था, न दायां था, न बायां था।

पास की चुङ्गी की लालटेन के छोटे से प्रकाश-वृत्त में देखा—कोई दस बरस का होगा। गोरे रङ्ग का है, पर मैल से काला पड़ गया है, आंखें अच्छी, बड़ी पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियां खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी न देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ़ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न एकाकी दुनिया। वह बस अपने निकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज़ दी—ए!

उसने अपनी सूनी आंखें फाड़ दीं।

दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है?

बालक मौन-मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

कहां सोएगा?

यहीं कहीं।

कल कहां सोया था?

दुकान पर।

आज वहां क्यों नहीं?

नौकरी से हटा दिया।

क्या नौकरी थी?

सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।

फिर नौकरी करेगा ?

हां।

बाहर चलेगा ?

हां।

आज क्या खाना खाया ?

कुछ नहीं।

अब खाना मिलेगा ?

नहीं मिलेगा।

यों ही सो जायगा ?

हां...।

कहां ?

यहीं कहीं।

इन्हीं कपड़ों में ?

बालक फिर आंखों से बोल कर मूक खड़ा रहा। आंखें मानों बोलती थीं—यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न है !

मां बाप हैं ?

हां।

कहां ?

पन्द्रह कोस दूर, गांव में।

तू भाग आया ?

हां।

क्यों ?

मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं,—सो भाग आया। वहां

नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था, और मां भूखी रहती थी, रोती थी, सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गांव में का था, मुझ से बड़ा। दोनों साथ यहां आये। वह अब नहीं है।

कहां गया।

मर गया।

इसी ज़रा-सी उम्र में उसकी मौत से पहचान हो गई!—मुझे अचरज हुआ, पूछा—मर गया?

हां, साहब ने मारा, मर गया।

अच्छा हमारे साथ चल।

वह साथ चल दिया। लौटकर हम, वकील दोस्तों के होटल में पहुंचे।

वकील साहब!

वकील लोग होटल के कमरे से उतर कर आये। काश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोज़े-चढ़े, पैरों में चप्पलें थीं। स्वर में हलकी झुंझलाहट थी। कुछ लापरवाही थी।

ओ-हो, फिर आप! कहिए?

आपको नौकर को ज़रूरत थी न? देखिए यह लड़का है।

कहां से लाये?—इसे आप जानते हैं?

जानता हूं—यह बेईमान नहीं हो सकता!

अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुण छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं—उठा लाये कहीं से—लो जी, यह नौकर लो।

मानिए तो; यह लड़का अच्छा निकलेगा।

आप भी...जी, बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाय।

आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूं !

मानें क्या खाक ?—आप भी...जी अच्छा मज़ाक करते हैं। अच्छा अब हम सोने को जाते हैं।

और वह चार रुपये रोज़ के किराये वाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गये।

(३)

वकील साहब के चले जाने पर, होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला; कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर वे मेरी ओर देखने लगे।

क्या है ?—मैंने पूछा।

इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था—अंग्रेज़ी में मित्र ने कहा—मगर दस-दस के नोट हैं ?—

नोट ही शायद मेरे पास हैं,—देखूं !

सचमुच मेरी जेब में भी नोट ही थे। हम अंग्रेज़ी में बोलने लगे। लड़के के दांत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। जाड़े की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा—तब ?

मैंने कहा—दस का नोट दे दो।

सकपका कर मित्र मेरा मुंह देखने लगे—अरे यार, बजट

बिगड़ जायगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं।

तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।··· मैंने कहा।

मित्र चुप रहे, जैसे कुछ सोच रहे हों। फिर लड़के से बोले—अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना। वह 'होटल-डि-पब' जानता है? वहीं कल दस बजे मिलेगा?

हां···कुछ काम देंगे, हजूर?

हां, हां, ढूंढ़ दूंगा।

तो जाऊं? लड़के ने निराश होकर पूछा।

हां—ठण्डी सांस खींच कर फिर मित्र ने पूछा—

कहां सोएगा?

यहीं-कहीं बेंच पर, पेड़ के नीचे—किसी दूकान की भट्टी के पास।

बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी—हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा—भयानक शीत है। उसके पास कम—बहुत कम कपड़े···!

यह संसार है यार! मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनाई—चलो, पहले बिस्तरे में गरम हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।

उदास होकर मित्र ने कहा—स्वार्थ !—जो कहो लाचारी कहो, निठुराई कहो—या बेहयाई !

दूसरे दिन नैनीताल-स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलार का वह बेटा—वह बालक, निश्चित समय पर हमारे 'होटल-डि-पब' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताली सैर खुशी-खुशी खतम कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाये बैठे रहने की जरूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही यह समाचार मिला—पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे—पेड़ के नीचे ठिठुर कर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उमर और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बतलानेवालों ने बतलाया कि गरीब के मुंह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर, बरफ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी ! मानो दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध कर दिया था।

सब सुना और सोचा—"अपना-अपना भाग्य"।

श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

(जन्म सन १६०१)

आप चुनार (ज़िला मिर्ज़ापुर) के रहनेवाले हैं। आपका जन्म सन १६०१ में हुआ। असहयोग-आन्दोलन में सम्मिलित होने के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा कुछ अधूरी-सी रही। आपकी प्रतिभा-शक्ति अनुपम है। उसके बूते उच्च शिक्षा की अपेक्षाकृत भी कोई कमी न रह गई।

यथार्थनामा श्री उग्र जी हिन्दी-कथा-साहित्य में एक उग्र और क्रान्तिकारी शैली के संचालक हैं। कथा-साहित्य में प्रेमचन्द-धारा और प्रसाद-धारा की तरह एक उग्र-धारा भी है जिसके आप एकमात्र उन्नायक हैं। प्रसाद जी कल्पना-जगत् के चितेरे हैं। उनकी रचनाओं में वास्तविकता की मात्रा कम, कल्पना और भाव-प्रवणता की मात्रा अधिक रहती है। प्रेमचन्द जी की रचनाएं हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब हैं। उनमें यथार्थता है और मर्यादापूर्ण आदर्शों की भावना भी। श्री उग्र जी भी सुधार की भावना से यथार्थ के चित्रण में विश्वास रखते हैं, किन्तु उनकी भाषा, भाव और शैली—सभी कुछ एकदम नया और अपना है। यही मौलिकता इन्हें दूसरे शैलीकारों से पृथक् कर देती है। महात्मा ईसा, चार बेचारे, दिल्ली का दलाल, दोज़ख़ की आग, इन्द्र-धनुष, चिनगारियाँ, बुआ की बेटी आदि आपकी अनेक कृतियाँ छप चुकी हैं। आपकी कृतियों का हिन्दी-जगत् में आदर भी बहुत हुआ है। कदाचित् ही किसी कलाकार ने अपने जीवन में इतनी लोकप्रियता प्राप्त की होगी जितनी अपने युग में आप को मिली।

अभागा किसान

शहर में बैल बेचने गये थे ?

हां भाई,—एक ठंढी सांस लेकर भिक्खन ने उत्तर दिया—दोनों बहुत अच्छे बैल थे। मैंने बच्चों की तरह उनका पालन-पोषण किया था।

आखिर उन्हें निकाला क्यों ? ऐसी कौन-सी ज़रूरत थी ?

ज़रूरत थी तभी तो निकाला है। पार-साल बड़ी लड़की के विवाह के लिए महाजन से कुछ रुपये कर्ज़ लिये थे। सोचा था कि इस वर्ष की फ़सल अच्छी होगी तो रुपये भर दूंगा। पर, ईश्वर के आगे किसी की कुछ नहीं चलती है। फ़सल ऐसी ख़राब हुई। जिसका वर्णन करना मुश्किल है। इधर महाजन के प्यादे ड्योढ़ी खोदने को तैयार थे। रोज़ सांझ-सवेरे चार बातें सुननी पड़ती थीं। लाचार होकर बैलों को बेच देना पड़ा।

अब ? इस साल खेती कैसे करोगे ?

राम मालिक है,—फिर वही लंबी सांस खींच कर भिक्खन ने कहा—किसी से किराये पर बैल मांगूंगा या किसी के साझे में खेती करूंगा।

और सब तो आनन्द है न ?

प्राण बचे हैं तो आनन्द ही है ?

अच्छा जाऊं रात हो रही है ?

अच्छा भाई, पालागी !

उपर्युक्त बातें भिक्खन और उसके एक परिचित कृषक मित्र में हुई थीं। भिक्खन का मित्र बहादुरपुर के पास ही के एक गांव का निवासी था।

जिस समय भिक्खन घर लौट रहा था, उस समय शीतल मन्द समीरण चल रहा था। अनन्त-नक्षत्र-मुक्ता-मंडित नीलाम्बर से निशा-सुन्दरी की शोभा चौगुनी हो रही थी। निशा के शृङ्गार-मय रूप पर मुग्ध निशापति फूले नहीं समाते थे। प्रकृति की उस शोभा को यदि कोई कवि देखता तो उसकी कल्पना का स्रोत मारे प्रसन्नता के फूट पड़ता। चित्रकार देखता तो उसकी तूलिका आनन्द-मुग्ध होकर इधर से उधर थिरकने लगती। पर, अभागे भिक्खन के लिए प्रकृति की वह रूप-छटा व्यर्थ थी। निशा-सुंदरी का वह शृङ्गार, श्मशान-यात्रा के समय का संगीत था; और चंद्र देव का हंसना मानो किसी पिशाच का अट्टहास था।

अभी वह अपने फूस के मकान की मिट्टी की ड्योढ़ी लांघने का विचार कर ही रहा था कि किसी ने ललकारा—

कौन है ? भिखुआ ?

भिक्खन सन्न हो गया। आवाज़ ज़मींदार के प्यादे की थी। अभी इस वर्ष की मालगुजारी भी अदा नहीं की गई। अदा होती तो कैसे होती ? फ़सल तो इतनी भी नहीं हुई कि स्त्री-बच्चों को साल-भर भरपेट भोजन मिल सके। मगर ज़मींदार—सरकार-राजा—मानेंगे ? कदापि नहीं। बड़े क्रूर हैं। असामियों को धूप में खड़ा कराते हैं, कोड़े लगवाते हैं, बैल नीलाम कर देते हैं।

पास मनुष्यता या दया नाम की कोई चिड़िया नहीं फटकने पाती। उस समय वे (यद्यपि देवनसिंह-ऐसे प्राणियों के लिए ये उपमाएं उपयुक्त नहीं; फिर भी) सत्य की तरह कठोर और न्याय की तरह समझौता-शून्य हो जाते हैं। रुपयों के लिए असामियों के ऊपर कोई भी अत्याचार करना, उनके न्याय-शास्त्र से अनुचित नहीं। रुपये न देने वाले आसामी की कोई भी बात, चाहे वह कितनी ही करुणामयी क्यों न हो, उनके अन्तस्तल को स्पर्श नहीं कर पाती। ग़रीब किसानों की "आह" का उत्तर वे अपने "अट्टहास" से देते हैं और उनके रोदन का स्वागत अपनी ताड़ना से करते हैं।

धूप मज़े में निकल आई थी। देवनसिंह का प्रशस्त प्रासाद भगवान मरीचिमाली के करों में खेल रहा था। ठाकुर साहब शौचादि कर्मों से छुटी पाकर बारहदरी में बैठे तंबाकू पी रहे थे। उनका एकमात्र पुत्र द्वारकानाथसिंह उनके पास ही चौकी पर बैठा अख़बार पढ़ रहा था। एक वर्ष हुआ द्वारका ने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली है। अब ठाकुर साहब उसे अपना-ही-सा दक्ष बना कर संसार से कूच करने की धुन में हैं। जिस समय भी उन्हें अवकाश मिलता है वे अपने पुत्र को अपनी नीति सिखाते। मुंह से धुआं निकालते हुए ठाकुर साहब ने कहा—

क्या पढ़ रहे हो ?

एक अंग्रेजी अख़बार है हुज़ूर।" छुटपन से ही द्वारका अपने पिता को "हुज़ूर" कहने का आदी है। देवनसिंह को सब

'हुज़ूर' ही कहा करते थे। अतः द्वारका भी "पिताजी" को वही कहा करता था। हुक्के की नड़ी को क्षण भर हाथ में लेकर हुज़ूर ने कहा—

अख़बार! अख़बार पढ़ कर समय नष्ट क्यों किया करते हो? अख़बारों में सब झूठी बातें ही रहती हैं।

झूठी बातें यह आपसे किसने कहा? अख़बार यदि झूठी बातें लिखा करते तो सरकार उन्हें क्या चलने देती?

अब मुझे पढ़ाओगे बेटा? यह ठीक है, मैंने तुम्हारी तरह गिटपिट करना नहीं सीखा है। मुझे तो हिन्दी भी पढ़ना नहीं आता। फिर भी बड़े-बड़े 'बालिस्टर' और वकील मेरे सामने बेवकूफ़ बन जाते हैं। कितने कलक्टरों और जजों को हवा बता चुका हूं। इसी में उम्र तमाम हुई है। अख़बार झूठ नहीं तो क्या लिखते हैं? उस दिन दिरगजसिंह (दिग्गजसिंह) कह रहा था कि—अख़बार में छपा है, विलायत में नदी के नीचे रेलगाड़ी चलती है! हा हा हा हा! नदी के नीचे रेलगाड़ी। मुझे मालूम है दिरगज भांग अधिक पीता है। नशे की झोंक में उसने सपना देखा होगा! नहीं तो, नदी के नीचे रेलगाड़ी चल सकती है? नदी के नीचे रसातल और रसातल में भगवान् शेष-नाग। शेषनाग की खोपड़ी पर कौन ऐसा 'अपरबल' है जो रेल चलाये? एक बार उनके 'फों' करने से संसार चक्कर खा जायगा। रेल-सेल हवा में मिल जायगी। हा हा हा हा! नदी के नीचे रेल! यह गप नहीं तो क्या है?

अपने पिता की अनभिज्ञता पर द्वारका को दया आगई।

इस बात को वह खूब समझता था कि, इनसे वाग्युद्ध में विजय पाना असम्भव है। अतः वह चुप रहा। पर, ठाकुर साहब कब माननेवाले थे। शायद वे कभी अख़बारों को और कोसते, पर, बहादुरपुर के प्यादों की उपस्थिति ने उनके वक्तव्य में बाधा दी।

क्या है हरनाम? बहादुरपुर वालों ने मालगुज़ारी अदा कर दी?

सब ने तो—आवश्यक से अधिक नम्रता और चापलूसी दिखाते हुए हरनाम ने कहा—सब ने तो अदा कर दी है, पर, एक······।

एक ने अभी नहीं की? वह कौन बदमाश है? उसे पकड़ लाये हो?

अभी नहीं हुज़ूर! इस बार बहादुरपुर में फ़सल ख़राब हो जाने की आम शिकायत है। तिस पर भिक्खन के खेत में तो सब से खराब फ़सल हुई। वह ग़रीब भी—।

बदमाश! जान पड़ता है उस साले ने तुझे कुछ घूस दे दी है। मुझे भिक्खन की ग़रीबी सुनाने चला है। किसी की ग़रीबी से मेरा क्या सरोकार। सरकार तो मुझे ग़रीब समझ कर दो दिन बाद मालगुज़ारी नहीं लेती। एक दिन की देर हो जाने से जुर्माने का डर रहता है। फिर मैं भिक्खन की ग़रीबी क्यों देखूं? क्या उसके खेत में एक पौधा भी नहीं उगा?

बहुत डरते-डरते हरनाम ने कहा—

उगा क्यों नहीं हुज़ूर! पर, इतना नहीं उगा कि वह साल-भर अपने बाल-बच्चों को खिलाये भी और ठीक वक्त पर अपनी

मालगुज़ारी भी दे। जो कुछ थोड़ा बहुत पैदा हुआ है उसने अपने पेट के लिए रख छोड़ा है।

पेट के लिए रख छोड़ा है! इन सब चालाकियों को मैं खूब समझता हूं। अच्छा तुम लोग अभी बहादुरपुर जाओ। तुम्हारे साथ 'छोटे सरकार' (द्वारका) जायंगे। छोटे!

ठाकुर साहब की दृष्टि द्वारका पर पड़ी। उसने कहा—

हुज़ूर!

तुम अभी बहादुरपुर जाओ। जाता तो मैं ही, पर अब तुम बच्चे नहीं रहे। तुम्हें भी सब कामों को समझ लेना चाहिए। वहां पर दो काम करने हैं। पहले मुखिया को बुला कर कहना कि मुझे मोटर खरीदनी है, इसलिए इलाके भर से 'मोटरावन' लिया जायगा। हल पीछे एक रुपया। इसका जल्द इंतज़ाम होना चाहिए। इसके बाद उस बदमाश भिखना को भी देखना। अगर वह सीधे से रुपये न दे, तो प्यादों की मदद से उसके घर में से अनाज निकलवा कर मुखिया के हाथ बेच देना। ये असामी साले बिना लात खाये मानते ही नहीं। अच्छा।

३

छोटे सरकार (द्वारकानाथसिंह) की प्रकृति अपने पिता से भिन्न थी। शिक्षा और सत्संग से उसकी आंखें खुल गई थीं। अपने पिता के फ़ौलादी शासन से वह घृणा करता था, पर पिता की उग्रता के कारण उसकी हिम्मत, विरोध करने का साहस नहीं करती थी। अधिकतर पठन-पाठन में व्यस्त रहने के कारण उसे जमींदारी के कामों में हस्तक्षेप करने का अवसर भी नहीं

मिलता था। फिर भी, मौक़ा पाते ही वह दबी ज़बान से "हुज़ूर" के सम्मुख अपनी राय कभी-कभी प्रकट कर दिया करता था। पर, हुज़ूर की ओर से उनका उत्तर "अभी तुम बच्चे हो, क्या जानो" ही मिलता।

यह पहला ही मौक़ा था जब वह एक ज़मींदार के उत्तराधिकारी की हैसियत से बहादुरपुर जा रहा था। पिता की आज्ञा मिलने पर पहले तो उसकी इच्छा हुई कि कोई बहाना कर न जाऊं। पर, फिर, पिता की प्रकृति का ध्यान कर, उसने आज्ञा पालन करना ही निश्चित किया। यह सब होते हुए भी उसको अपने मन पर विश्वास नहीं था। वह रास्ते भर यही सोचता रहा कि यदि बहादुरपुर पहुंचने पर पिता की राय से मेरी राय न मिली तो? तो?—तब?

× × ×

गांव के मुखिया और छोटे सरकार को पन्द्रह-बीस प्यादों के साथ अपने घर की ओर आते देख भिक्खन भय से कांप गया। हे ईश्वर! क्या होने वाला है? वह झपट कर घर के भीतर गया। और, एक टूटी-सी चारपाई निकाल लाया। उसी पर छोटे सरकार और मुखिया जी बैठ गये।

भिक्खन! मुखिया ने कहा—छोटे सरकार आये हैं तुमने अभी अपनी मालगुज़ारी क्यों नहीं दी?

मुखिया बाबा!—वृद्ध मुखिया की ओर हाथ जोड़ और करुण-दृष्टि से भिक्खन ने कहा—आप भी पूछ रहे हैं मैंने अभी तक सरकार की मालगुज़ारी क्यों नहीं दी

आपसे कुछ छिपा है? आपने देखा ही है इस बार गांव भर में सब से खराब फ़सल मेरी ही हुई है। वही दस-पांच मन दाना है। अगर सरकार को मालगुज़ारी दे दूं, तो बूढ़ी मां को क्या खिलाऊंगा? स्त्री और दो बच्चे किसके दरवाज़े पर टक्कर खायंगे?

मुखिया के कुछ कहने के पहले ही एक कारिंदा बोल उठा—

ज्यादे आंस-बांस मत गिराओ। तुम्हारे ऐसे कितने चालबाज़ों को हम लोग देख चुके हैं। जाकर रुपये ले आओ। हुज़ूर की यही मरज़ी है।

उस कारिंदे की ओर घृणा से देखकर द्वारका ने कहा—

तुम चुप रहो।

मुखिया जी पुनः बोले—

देखो भाई, सरकार को भी बड़े-बड़े झंझटों का सामना करना पड़ता है। उन्हें भी मालगुज़ारी देनी पड़ती है। तुम तो सौ पचास रुपये का इन्तज़ाम करके ही छुट्टी पा जाते हो। हुज़ूर को हज़ारों—कई हज़ार रुपयों का इंतज़ाम करना पड़ता है। वक्त से मालगुज़ारी न मिलने पर ऊपर साहबों की झिड़कियां भी सुननी पड़ती हैं। इसलिए, जैसे हो वैसे रुपयों का कोई इन्तज़ाम कर दो। नहीं तो बैल बेचकर ही मालगुज़ारी दे दो। जब जोताई का वक्त आवे, तो मुझ से कहना, मैं तुम्हें सस्ते भाड़े पर हल-बैल दिला दूंगा।

बैल—भिक्खन बैलों की याद आ जाने से रोने लगा। बैल तो मुखिया जी, कभी के बिक गये। क़र्ज़ लेकर लड़की की शादी की थी। महाजन सिर खा रहा था। दावा करने की धमकी

दे रहा था। इसीसे लाचार होकर, मैंने अपने प्यारे बैलों को कल बेच दिया और महाजन की भरपाई कर दी। अब बैल कहां हैं? मेरे बैल कैसे तैयार थे मुखिया बाबा! मैं चाहे खुद न खाता, पर उन्हें मजे में रखता था। अनबोलते जानवरों का कलपना बाल-बच्चों के आगे आता है। इसी से मैं उन्हें बड़े सुख से रखता था। फिर, बैल ही हमारे महादेव बाबा हैं। वही अन्न-दाता हैं......।

कहते-कहते भिक्खन ने सोचा कि महादेव बाबा (बैल) घर से चले गये, तो जरूर कोई-न-कोई अनर्थ होने वाला होगा। नहीं तो वे क्यों जाते? उसने व्यग्रता-पूर्ण स्वर से कहा—

मुखिया बाबा! रुपयों के लिए हमने अपने महादेव बाबा को—देवता को—कल बेच दिया है। अब बैल मेरे पास कहां हैं?

इसी समय भिक्खन की वृद्धा माता दौड़कर छोटे सरकार के पैरों से लिपट गई। उसने रोते-रोते कहा—

भैया! बाबू!! मेरे भीख को कोठी पर पकड़ कर मत ले जाना। सुना है वहां पर बड़ी मार पड़ती है। मेरा बेटा खाने बिना टूट गया है भैया। हमारे पास एक कौड़ी भी नहीं है। नहीं तो, हम जरूर सरकार की मालगुजारी दे देते।

यह क्या करती हो माँ, यह क्या करती हो—कह कर द्वारकानाथ ने अपने पैर खींच लिये। उनकी आंखों से आंसू की दो बूंदें वृद्धा के श्वेत केशों पर गिर पड़ीं। उन्होंने कहा—

घबराओ मत। भिक्खन को कोठी पर नहीं लेजायंगे।

इतने में द्वारकानाथ की दृष्टि तीन-चार वर्ष के एक दुर्बल बालक पर पड़ी। वह भी भिक्खन की माता का हाथ पकड़े रो रहा था। उसे भी अपने पिता पर आई हुई विपत्ति से भय था। अबोध बालक! युवक द्वारकानाथ ने ऐसा करुणामय दृश्य कभी नहीं देखा था। वह घबरा गया। उसकी आंखों ने अधिक देर तक भिक्खन, वृद्धा और बालक की ओर देखने से इनकार कर दिया। उसने दृष्टि फेर ली। पर, यह क्या! वह कौन है? द्वारकानाथ ने देखा भिक्खन की देहली के पास, दीवार की आड़ से दो अश्रु-पूर्ण आंखें उसकी ओर निहार रही थीं। वहां भी कोई स्त्री, गोद में बच्चा लिये, रो रही थी। वह अभागे भिक्खन की गृहलक्ष्मी थी।

जेब में हाथ डालते हुए द्वारकानाथ ने भिक्खन से कहा—

अच्छा, जब तुम्हारे पास रुपये हों तब मालगुजारी दे देना। जान पड़ता है इस समय तुम्हारे पास खर्च करने को एक पैसा भी नहीं। यह लो……।

दस-दस रुपये के दो नोट! छोटे सरकार की उदारता ने भिक्खन, उसकी वृद्धा मां और गृहिणी को भर-पेट रुलाया। सच्ची उदारता को देख कर भले आदमियों की दरिद्रता रोने क्यों लगती है?

४

क्रोध से कांपते हुए ठाकुर देवनसिंह ने द्वारकानाथ से पूछा—
मैंने तुम्हे इसीलिए भेजा था?

हुजूर.........।

हुजूर के बच्चे ! पहले यह बता कि मैंने तुझे क्या कहने को कहा था ? तूने भिक्खन से मालगुज़ारी क्यों नहीं वसूल की ?

वह बड़ा ही गरीब है। मालगुज़ारी वसूल करने के लिए उसके घर का अनाज छीन लेना पड़ता। ऐसी हालत में वह खाये बिना मर जाता। केवल वही नहीं, उसकी बूढ़ी मां, स्त्री और बच्चे—

चुप रह गधे ! केवल एक बात का जवाब दे। तूने उससे मालगुज़ारी क्यों नहीं वसूल की ? वह तेरा कौन लगता है जो उसके लिए मेरी बात टाल दी ? उत्तर दे !

वह बड़ा गरीब है।

फिर, उसे रुपये भी दे आया है। इसी तरह ज़मींदारी करेगा ? काम कर देता तो मैं तेरा मुंह चूम लेता। बाप के रुपयों को पानी की तरह बहाने में कोई बहादुरी नहीं है। इसी तरह प्रजा चौपट होती है। उदारता दिखाने चले थे ! चला जा सामने से, नहीं तो खून पी लूंगा। नालायक, पाजी।

उसी समय एक कारिंदे को बुला कर देवनसिंह ने हुक्म दिया—

अभी जाकर भिखना से मालगुज़ारी वसूल कर लाओ। चाहे जैसे हो, वसूल करके ही लौटना। घर में आग लगा देना, पर मालगुज़ारी लेकर आना। हमारे लायक द्वारकानाथ ने जो बीस रुपये दिये हैं, उन्हें भी छीन लाना।

× × ×

शाम होते-होते भिक्खन से मालगुजारी वसूल कर देवनसिंह के प्यादे-कारिंदे लौटे। उनके साथ ही द्वारकानाथ की उदारता के दोनों नोट भी लौट आये। नौकरों ने देवनसिंह को बताया कि भिक्खन के घर का एक-एक दाना बेच दिया गया।

उमर भर में उस दिन पहली बार द्वारकानाथ ने "अपमान" के दर्शन किये। पिता के सामने से जाने के बाद घंटों तक वह बालकों की तरह रोता रहा। जिस समय नौकर देवनसिंह को भिक्खन के सर्वनाश की भूमिका सुना रहे थे उस समय द्वारकानाथ भयंकर ज्वर की गोद में तड़प रहा था।

५

उक्त घटना के दस दिन बाद की बात है। द्वारकानाथ की तबीयत बहुत कुछ अच्छी हो गई थी। फिर भी कभी-कभी ज्वर हो जाता था। वह दिन-रात भिक्खन के विषय में ही सोचा करता। उस दिन भी, दोपहर की दवा पीने के बाद, भिक्खन की ही बातें सोचते-सोचते उसकी आंख लग गई। वह स्वप्न देखने लगा—मानो रात का समय है। तीन से ऊपर बज गये हैं। वह भिक्खन के द्वार पर खड़ा है। पर भिक्खन का कहीं पता नहीं। उसने आवाज़ दी, पर भीतर से उत्तर नहीं आया। लाचार वह घर के भीतर घुसा। भीतर पहुंचने पर उसे ऐसा मालूम पड़ा, मानो कोई चक्की चला रहा है। इतने में सामने की कोठरी में से किसी के गाने की आवाज़ आई—

"सुनियत दीनबन्धु तुम राम।"

द्वारका झपट कर उस कोठरी में घुस गया। उसने देखा

भिक्खन की स्त्री और वृद्धा माता बैठ कर चक्की चला रही थीं। वृद्धा के हाथ का मांस, चक्की के प्रत्येक चक्कर के अंत में, बड़े ज़ोर से और बड़ी देर तक कांपता था। फिर भी, वह चक्की चला रही थी। भिक्खन की स्त्री ने घूंघट खींच कर अपना मुंह ढकना चाहा, पर उसकी धोती इतनी बड़ी कहाँ थी जो उसका मुंह ढक सकती। अभागिन ने मारे लज्जा के अपना मुंह नीचे झुका लिया। द्वारका ने वृद्धा से पूछा—

मां, इतनी वृद्धा होने पर भी तुम चक्की चलाती हो?

हां बेटा! हम ग़रीब लोग जन्म भर काम करते हैं। हमारे लिए जवानी बुढ़ापा एक ही है।

मां, बहुत कम—यह कौन अनाज है? इतना कम? तुम लोग इतना ही पीस सकती हो?

नहीं बेटा इतना ही मिला है। जिस दिन से तुम्हारे पिता ने हमें लुटवा लिया है, उसी दिन से हम लोग यहां-वहां से अन्न उधार मांग कर काम चला लेते हैं। दो बच्चे हैं, उनसे भूख नहीं सहन होती। हमारा पापी पेट भी नहीं मानता। आज तक तो उधार भी मिला है, कल यह भी न मिलेगा। बेटा! कल हमारा रामू, हमारी मुन्नी भूखी सो रहेगी। ओह! बहुत रोयेगी। मगर, कल······

भिक्खन कहां है?

वह—वह? मेरा लाल! बेटा, उसे अब तुम देख कर पहचानोगे नहीं। सूख कर कांटा हो गया है। दिन-रात इधर-से-उधर नौकरी की तलाश में दौड़ रहा है, पर उसे कोई नौकर नहीं

रखता। कहीं जगह नहीं है। अगर उसे तीन-चार दिनों तक और नौकरी न मिली, तो हम भूखों मर जायंगे। उसे अपने ही यहां काम दिला दो। तुम राजा हो। हमारे बच्चे की जान बचाओ। ईश्वर तुम्हारा भला करेगा। कहो तो उसे तुम्हारे यहां भेज दूं। बुलवा दूं ? वह बगलवाली कोठरी में सो रहा है।

नहीं, बुलाओ मत। कल भेज देना। हम नौकरी दिला देंगे।

ईश्वर तुम्हें राजा बना दे।

दोनों पुनः चक्की चलाने लगीं। द्वारका ने कहा—

मां अपना गीत गाओ।

दोनों करुणकंठ से गाने लगीं—

"सुनियत दीन-बन्धु तुम राम।
पर हम पर टुक दया न लावत कैसे करुणाधाम ?"

गाना सुनते-सुनते द्वारका अपने मन में सोचने लगा कि सच-मुच "राम" नामक कोई शक्ति है या नहीं ? यदि संसार का रक्षक कोई ईश्वर होता और वह होता न्यायी और दीनबन्धु, तो क्या भिक्खन और उसके परिवार की यह अवस्था होती ! सब ढोंग है, असत्य है। ईश्वर कहीं नहीं है। यदि वह कहीं होता तो संसार की इस विषमता को कदापि न देख सकता।

× × ×

इसी समय किसी नौकर ने द्वारकानाथ को जगाया—

सरकार शाम हो गई।

उफ़ ! मैं सो रहा था ? उफ़ !

बाहर कई घंटों से भिक्खन बैठा है, वह आपसे मिलना

चाहता है।

भिक्खन ! उसे अभी ले आओ।

भिक्खन आया। द्वारकानाथ ने देखा कि उसकी बुरी हालत थी। बिलकुल सूख गया था। ऐसा जान पड़ता था मानों महीनों से कुछ खाया नहीं है। द्वारका ने पूछा—

क्या हाल है भाई भिक्खन ?

सरकार !—आंखों में आंसू भर कर भिक्खन ने कहा—मुझे अपने यहां कोई नौकरी दिला दीजिए। हमारा परिवार तीन दिन से उपवास कर रहा है। चल कर देख आइए, बच्चे मारे भूख के छटपटा रहे हैं, बूढ़ी मां का बुरा हाल है, मेरा घर नरक हो रहा है। कोई नौकरी दिलाइये; नहीं तो हम सब मर जायँगे।

द्वारका ने कहा—आज से तुम हमारे यहां नौकर हुए। पंद्रह रुपए मिलेंगे। इतने से तुम्हारा काम चल सकेगा ?

बहुत है सरकार ! ईश्वर आपको सुखी रखें। इतने से जान बच जायगी। जब तक दूसरी फ़सल तैयार नहीं होती, तभी तक सब तकलीफ़ें हैं। फिर तो, भगवान की दया से मुझे नौकरी न करनी होगी। किसानों का काम नौकरी से नहीं चल सकता।

भिक्खन को एक महीने की तनख़ाह पेशगी दिला कर उसके साथ ही द्वारकानाथ भीतर से बाहर निकला। न जाने क्यों उस की इच्छा बहादुरपुर जाने की हुई। उसने अपना घोड़ा मंगवाया।

६

मुन्नी (भिक्खन की छोटी लड़की) ढाई बरस की थी। उसे अपने घर की दरिद्रता और विपत्ति का क्या ज्ञान। उसने कहा—

मां, भूख; लोटी दो मां ! भूख !

चौवीस घंटों से मुन्नी ने एक दाना भी नहीं खाया था। उस की मां की आंखों में आंसू आ गये। मुन्नी को हृदय से चिपटाते हुए उसने कहा—

बेटी, तेरे बाबा मिठाई लाने गये हैं। अब आते ही होंगे।

पास ही, टाट के टुकड़े पर पड़ी, भिक्खन की बूढ़ी मां मारे भूख के अन्तिम सांस खींच रही थी। मुन्नी की रोती हुई आवाज़ उसके कानों में गई। स्त्रियों को बच्चों का बड़ा मोह होता है। कल शाम को भी मुन्नी ने कुछ नहीं खाया था और आज दूसरी शाम भी आगई ! अभागिन मुन्नी !! धीरे से करवट बदलते हुए बूढ़ी ने अपनी पतोहू से कहा—

देख बेटी ! किसी के यहां से कुछ मांग ला। मुन्नी मारे भूख के तड़प रही है। हे भगवान ! ऐसे दिन किसी शत्रु को भी न दिखाना।

आंखों से आंसू टपकाते हुए मुन्नी की मां ने कहा—

मां जी ! अब कोई कुछ नहीं देता। सब ताने मारते हैं। कहते हैं सांड-सा खसम तो जीता है, भीख मांगते शरम नहीं आती ! सब झिड़कते भर हैं, कोई कुछ देता नहीं।

इतने में बाहर से दौड़ता हुआ रामू आया। उसने भी कल से ही नहीं खाया है।

मां कुछ खाना दो ! चने भी नहीं हैं मां ! चने ही दो। बड़े जोर की भूख—!

मां मुझे भी भूख—!

मां, यहां क्यों आई ? यहां कौन खाना देगा ?

मैं दूंगी बेटा—कह कर उसने रामू की गरदन अपने हाथ से पकड़ कर उसे अपने सामने खींचा। साथ ही, कुछ सोचकर कांप उठी। इस बार मुन्नी ने कहा—मां भूख ! फिर वही भूख ? हत्यारिनी, पिशाचिनी भूख ! माता ने पुत्र को कलेजे से लगा कर उसका मुंह चूमा। फिर बोली—

बेटा, मैंने तुझे बड़ा कष्ट दिया। गुलाब-सा मेरा लाल दो दिनों से भूख से तड़प रहा है। अब तुझे खाने की तकलीफ़ कभी न होगी मेरे लाल !

रामू को उसकी माता ने अपने हृदय से हटा कर सामने बैठाया। उसके दोनों हाथ रामू की गरदन की ओर बढ़े। हाथों की आहट पाकर उसने सोचा·—मां कुछ दे रही है।

क्या है मां ? खाना ?

हां बेटा ! जोर से पकड़ कर, दुबले-पतले पुत्र की गरदन को अभागिनी मां ने ऐंठ दिया। इतने जोर से ऐंठी कि वह सांस भी न ले सका। क्षण-भर बाद तालाब के भीतर से आवाज़ आई—छपाक !

मुन्नी को भी तालाब की कंठ-ध्वनि सुनाई पड़ी। पर उस का ध्यान उधर न गया। वह सोच रही थी कि उसका भैया खाना पाकर चुप हो गया है। अभी मां ने उसे खाना नहीं दिया !—मां, भूख !

हां बेटी ! तुझे भी देती हूं। मुन्नी—सुकुमार मुन्नी की गरदन दबाने में मां को जितना कष्ट हुआ उसका वर्णन नहीं हो

सकता। फिर भी, माता ने उसे क्षमा नहीं किया। क्षण-भर में वह पुष्प भी, मसल कर, पुष्कर के पेट में डाल दिया गया फिर वही आवाज़ आई—छपाक !

थोड़ी देर बाद एक भयंकर "छपाक !" और सुनाई पड़ा। वह अभागे भिक्खन की गृहिणी की आत्महत्या की क्रूर कंठ-ध्वनि थी।

७

अपनी वृद्धा मां, प्यारी स्त्री और हृदय के टुकड़े बच्चों को भयंकर चिता में भस्म कर देने के बाद—श्मशान के हृदय को कंपित करते हुए—अभागे किसान ने छोटे सरकार के चरणों पर पन्द्रह रुपये रखते हुए कहा—

अब नौकरी नहीं करूंगा सरकार ! अब मुझे खाने की तकलीफ़ भी न होगी। आप अपने रुपये सहेज लें।

भिक्खन को हृदय से लगा कर द्वारकानाथ बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा; पर अभागे भिक्खन की आंखों में आंसू नहीं थे।

ज्वालादत्त शर्मा

"प्रत्यक्षवाद" और आदर्शवाद" दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण कर कला का निर्वाह करनेवाले कलाकारों में शर्म्मा जी का नाम उल्लेखनीय है। प्रेमचन्द जी ने अपनी अपूर्व प्रतिभा द्वारा कहानी-संसार में जिस नवीन धारा का सूत्रपात किया था उसके प्रमुख लेखकों में शर्म्माजी भी हैं। उनकी तरह आपकी शैली व्याख्यात्मक है। प्रभाव के लिए आप घटनाओं की व्यंजकता पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं रखते और न ही पाठकों की सहृदयता अथवा रसिकता पर आप बहुत कुछ छोड़ना चाहते हैं। अतः कलाकार के साथ-साथ आप सूक्ष्म रूप से सुधारक के रूप में भी चलते हैं। आपका साहित्यिक जीवन संवत् १९७१ से प्रारम्भ होता है। आपकी पहली कहानी उस वर्ष "सरस्वती" में निकली थी।

प्रस्तुत कहानी आपकी कहानी-कला का अच्छा नमूना है।

विधवा

१

राधाचरण की अकाल मृत्यु से उसके चाचा-चाची को बहुत शोक हुआ। किन्तु अभागिन पार्वती के लिए तो संसार ही अन्धकारमय हो गया। उसके लिए तो संसार में आशा, उत्साह और सुख का सोलहों आने नाश हो गया। उसने इस घोर दुःख को, इस अनभ्र वज्रपात को, दिल का खून करके किसी तरह सहन किया। वह न रोई, न चिल्लाई। उसने इस असह्य दुःख को मन की पूरी शक्ति से चुपचाप सहन किया। शोक के भारी बोझ से पार्वती का सुकोमल मन निस्सन्देह चूर-चूर हो गया। किन्तु विधि के इस विपरीत विधान में किसी का क्या वश था!

राधाचरण के चाचा रामप्रसाद औसत दर्जे के आदमी थे। राधाचरण के पिता गुरुप्रसाद का देहान्त, जब उसकी अवस्था पांच वर्ष की थी, तभी हो गया था। सुनीति माता भी पति की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही स्वर्ग-लोक-गामिनी हो गई थी। इस लिए बालक राधाचरण का पालन-पोषण चाचा रामप्रसाद और उसकी पत्नी हरदेवी ने ही किया था। उनके पास कुछ पैतृक सम्पत्ति थी, जिसकी आय से घर का खर्च चलता था। रहने को पक्का मकान था। पर इस पैतृक सम्पत्ति

और रहने के मकान में—जायदाद के क्षयरोग—कर्ज़ के कीटाणुओं ने प्रवेश कर लिया था। रामप्रसाद ने अपनी कन्या चमेली के विवाह में शहर के मूर्ख और निठल्ले आदमियों के मुंह से चिकनी-चुपड़ी बातें सुनने के लिए बहुत रुपया बरबाद किया था। विवाह के बाद, कोई एक सप्ताह तक, पकवान की सुगन्धि के साथ-साथ रामप्रसाद की इस मूर्खता-पूर्ण उदारता की बू भी मुहल्ले में सर्वत्र, और शहर में यत्र-तत्र फैल रही थी। खस्ता कचौरी, मोतीचूर के लड्डू, गोल बालूशाही, कुरकुरी इमरती और मसालेदार तरकारियों के साथ-साथ नये चमकते हुए "इन्दुसम उज्ज्वल" रूपराज की दक्षिणा की बात जहाँ-तहाँ होती थी। किन्तु रामप्रसाद के यश की उस स्निग्ध चांदनी में, उसके विमल यश की सफ़ेद चादर में, कोई कलंक न हो, कोई धब्बा न हो, सो बात नहीं। दुष्ट समालोचक, जिन्होंने ज्योनार में कई दिन पहले से अल्पाहार करते रहने के कारण, बुरी तरह खस्ता कचौरी और मेवा-मिली मुलायम मिठाइयों का ध्वंस किया था, अपने दुष्ट, पर प्रकृतिदत्त स्वभाव से मजबूर होकर बाल की खाल निकालने और रामप्रसाद की दूध की गंगा में विष मिलाने लगे। कोई कहता था—कचौरियों में मोयन कम डाला गया और कोई बताता था कि शाक में नोन ज्यादा हो गया था। कोई लड्डुओं की बुंदी को ठोस, तो कोई बेसन की बरफ़ी को सख्त कहता था। मतलब यह कि रामप्रसाद की मूर्खता का श्राद्ध करने वाले नर-पुङ्गवों की भी कमी न थी। किन्तु घरों की

मालकिनें, जिन्होंने अपने बच्चों से रुपये छीनकर बटुवों में भर लिये थे और इस तरह एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया था, रामप्रसाद की प्रशंसा अपनी प्रलयङ्करी बुद्धि की सहायता से शत-शत मुख से कर रही थीं। इस प्रशंसा-रूप बीमारी का दौरा भी एक महीने से अधिक न रहा। हलवाइयों के हिसाब के साफ़ होते ही लोगों के बेकार अतएव ख़ाली दिमाग़ भी इस ख़ब्त से ख़ाली हो गये। छः मास के बाद, रामप्रसाद के उकसाने पर भी किसी को लड्डुओं की बूंदियों में तरावट मालूम न होती थी—कोई उस विषय का उत्थान न करता था। इससे रामप्रसाद की श्लाघा सुनने की अभिलाषा पर तुषार-पात हो जाया करता था। किन्तु उसकी आशा-लता को पल्लवित करने वाला सूदख़ोर छज्जूमल महाजन पड़ौस का हक़ क़रीब-क़रीब रोज़ निभा देता था।

जिस साल रामप्रसाद की लड़की चमेली का विवाह हुआ था, उसी साल राधाचरण बी० ए० में तीसरे नम्बर पर पास हुआ था। राधाचरण को स्कूल से ही, उसकी योग्यता के कारण, छात्रवृत्ति मिलती थी। पर बी० ए० की फ़ीस और किताबों के लिए चाचा रामप्रसाद ने उसे १५०) ज़रूर दिये थे। उसी साल "ग़रीब-नवाज़" लाला छज्जूमल ने यथा-नियम अगले-पिछले जोड़कर रामप्रसाद से पांच हज़ार रुपयों का दस्तावेज़ लिखा कर उसकी "इज़्ज़त" बचाई थी। कोई तीन हज़ार रुपये उसने लड़की के विवाह में स्वाहा किये थे। किन्तु कर्ज़ का प्रसङ्ग उठते ही रामप्रसाद भतीजे की पढ़ाई का उल्लेख

करते थे। उनके हिसाब से यदि राधाचरण न पढ़ता तो उन्हें ऋणी न बनना पड़ता। छोटी-छोटी बातों पर रामप्रसाद राधाचरण से कहते—अभी तूने हमारी क्या सेवा की है? एक साल से पचास रुपये महीना कमाने लगा है। मुझे देख, तेरी पढ़ाई के कारण ही तबाह हो गया। इतना देना हो गया।

सुशील राधाचरण अपने मूर्ख चाचा की बात का उत्तर न देता था। नीची गर्दन करके वह सब कुछ सुन लेता था।

राधाचरण की मृत्यु से चाचा और चाची को बेशक दुःख हुआ; पर दुःख की उस तीव्र आग में जलते हुए भी रामप्रसाद ने राधाचरण के कारण क़र्ज़दारी का ज़िक्र करने की प्रवृत्ति को बड़े यत्न से सुरक्षित रखा।

२

शोक की प्रबल लहरों में बही जानेवाली रामप्रसाद-दम्पती ने अपने धेवते का सहारा पाकर बहुत कुछ शान्ति लाभ की। भाद्रपद की वर्षा के बाद जिस तरह सूर्य और अधिक असह्य हो उठता है, उसी तरह शोक-सागर में स्नान करके रामप्रसाद-दम्पती का कठोर हृदय और अधिक सख़्त हो गया। अब वे बात-बात में कहते थे—राधे, हमें मार गया। वह हमारा भतीजा नहीं, शत्रु था। हमें बरबाद करने आया था।

पार्वती शोक-महानद की जिस प्रबल लहर में बही जा रही थी, उसमें तिनके का भी सहारा नहीं। वह थी और अनन्त शोक की अनन्त लहरें थीं। उसके लिए भाद्रपद के तरुण सूर्य की प्रखर धूप ज्योतिहीन थी—प्रकाशहीन थी। शरत्काल के लुभावने चन्द्रमा

की चिकनी चांदनी उसके लिए सिंह के सूर्य की धूप से कहीं अधिक प्रखर थी। उसके मन में शोक की प्रचंड अग्नि धू-धू जल रही थी। बाहर रामप्रसाद दम्पति का कठोर व्यवहार उस अबला को बेदम किये देता था। शोक की अनन्त ज्वाला में, अनन्त विरह के प्रचंड अनल में, निराशा के घने अन्धकार में, उपेक्षा के दुर्गन्धिपूर्ण संसार में—सब कहीं—उसे परलोकगत पति का पूत और पवित्र मुख-पद्म दिखाई देता था, मानों वह उससे मौन भाषा में कहता था—प्रिये पार्वती! धैर्य धारण करो, त्रितापदग्ध संसार में जब तक हो, जैसे बने, काल-यापन कर दो। स्वर्ग में मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं तुम्हें अवश्य मिलूंगा, क्योंकि तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा हूं।

पार्वती का छलनी की तरह छिदा हुआ हृदय शान्त हो जाता था। रामप्रसाद-दम्पती का कठोर व्यवहार उसके लिए सुकोमल हो जाता था। संसार भी उसकी दृष्टि में इतनी घृणा का पात्र नहीं रहता था; उस पर से उसकी विरक्ति की मात्रा कम हो जाती थी। संसार के अन्तरिक्ष में ही, इसी संसार के आकाश में ही, उसके परलोकवासी पति के प्रभा-पूर्ण मुख का प्रतिबिम्ब मध्याकाश में न सही, हृदयाकाश में ही सही—दिखाई पड़ता था। इसलिए संसार उसके लिए उतना हेय नहीं रहता था; कुछ काम की चीज़ हो जाता था।

सास के कुलिश-सम कठोर वाक्यों और उससे भी बढ़कर पुरुष पार्थिव व्यवहारों को यह अनायास सह लेती थी। मृत्यु-शय्या पर पड़े पति के ज्योति-हीन नेत्रों का कातर भाव उसे

कभी न भूलता था। उसके आखिरी शब्द—"प्रिये पार्वती—" आज भी उसके कानों में गूंज रहे थे। उस कातर भाव की शब्द-हीन भाषा का मर्म भी उसने ठीक-ठीक समझ लिया था। चाचा-चाची का कठोर स्वभाव और पार्वती के मायके की शोचनीय अवस्था ही उस कातर भाव का प्रधान उपादान थी। पार्वती-हिन्दी-मिडिल पास थी। राधाचरण ने बड़े आग्रह से उसे अंग्रेजी भी पढ़ाई थी। उसका विचार था कि वह उससे मैट्रिक परीक्षा दिलायेगा; किन्तु उसकी अकाल मृत्यु ने, बहुत सी अन्य बातों के साथ, इस विचार को भी कार्य में परिणत न होने दिया।

पति की मृत्यु के बाद अभागिन पार्वती को पुस्तक छूने का अवसर ही न मिलता था, घर में उसकी कोई सत्ता ही न थी। सास राधाचरण की मृत्यु का कारण उसे ही समझती थी। पार्वती अन्न पीसती है, चौका-बरतन करती है, भोजन बनाती है; किन्तु फिर भी सास-ससुर की सहानुभूति का पात्र नहीं बनती। फिर भी उनके मुंह से कभी मीठी बात नहीं सुनती, सुनती है कर्ज़दारी का कारण, अपने दुर्भाग्य की गाथा और कभी-कभी गूढ़ प्रेम के परदे में पति की निन्दा।

पार्वती को कुटिलता-पूर्ण संसार में सहानुभूति का चिह्न कहीं दिखाई न देता था। उसके एक चचेरा भाई था, वह कहीं पटवारी था, पर था विवाहित। इसलिए वर्षा के मेघ—सन्तान की बहुतायत—से माला-माल था। अत्यन्त गर्मी पड़ने के बाद वर्षा होती है। बहुत तप चुकने पर धराधाम जल की

अनन्त धाराओं से स्रावित हो जाता है। पार्वती ने भी निराशा के घोर अन्धकार में, सास-ससुर के कठोर व्यवहार रूप नरक में उपेक्षा के समुद्रों में, शोक के महासागर में, ध्रुव तारे का दर्शन किया। उसे देखकर दिग्भ्रष्टा पार्वती ने कर्त्तव्य-पथ का निश्चय कर लिया। सामने खड़ी अलमारी में भरी हुई पुस्तकें उसे मानों अपनी-अपनी भाषा में सान्त्वना देने लगीं। वे कहने लगीं-पार्वती! तू पढ़ी-लिखी है, हम तेरी साथिन हैं दुःख में, शोक में, सन्ताप में सदा-सर्वदा हम तेरी साथिन हैं। हमें घृणा करना नहीं आता, उपेक्षा करना नहीं आता, हम से भले कोई दिक़ हो जाय, हम किसी से दिक़ नहीं होतीं। पुस्तकों की विभिन्न, पर मौन भाषा को उसने साफ़-साफ़ समझा। उसके भग्न हृदय में शान्ति की अस्फुट किरण का उदय हुआ। अलमारी की चुनी हुई किताबों में उसने साक्षात् अभयदा सरस्वती के दर्शन किये। बहुत समय के बाद मानों मां सरस्वती के इशारे से ही उसने अलमारी में से एक पुस्तक निकाली। पुस्तक थी सुप्रसिद्ध ग्रंथकार स्माइल्स साहब की 'Self Help' या आत्मावलम्बन। चटाई पर बैठ कर पार्वती उसे पढ़ने लगी।

पुस्तक के अभी दो ही चार पृष्ठ पढ़े होंगे कि रामप्रसाद की स्त्री वहां आ पहुंची। पार्वती को पुस्तक पढ़ते देखकर उसके शरीर में आग लग गई। उसने अपने अभ्यस्त अनेक कुवाक्यों का विष उगल कर अन्त में कहा—पुस्तकें पढ़कर ही तू राधे को चट कर गई। तू नार नहीं नागन है। भगवान्! मेरे घर में ऐसी डायन कहां से आ गई? वह था—नष्ट कर गया; तू

है—नष्ट करने की चिन्ता में है।

हिरन के बच्चे पर शेरनी को गुर्राता देखकर जिस तरह उस का प्रणयी शेर भी गरजने लगता है, उसी तरह रामप्रसाद भी गरीब पार्वती पर टूट पड़ा। उसने भी स्वस्ति-वाचन के बाद कहा—ठीक तो कहती हैं, यह नार नहीं, नागन है। कहीं को मुंह काला भी तो नहीं करती। मैं ऐसी नागन को पालना नहीं चाहता उसे खा गई। अब मुझे खायगी क्या?

इधर रामप्रसाद बक रहा था, उधर पार्वती के हृदय में अनेक तरंगें उठ रही थीं। उन्हीं तरंगों में उसने अपने पति राधाचरण के दर्शन किये। इस समय उसकी आंख में कातरता के साथ दुःख भी था, विषाद भी था और अभागिन पार्वती के लिए थी—गहरी सहानुभूति। स्माइल्स साहब की आत्मा भी अबला पार्वती को पुस्तक के रूप में खूब बल प्रदान कर रही थी। पार्वती ने पुस्तक को बंद कर दिया। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर सोने के अक्षरों में छपे "सेल्फ-हेल्प" के मनोहर शब्द पार्वती के अश्रुपूर्ण नेत्रों को अपनी ओर खींचने लगे।

३

दूसरे दिन प्रातःकाल पार्वती ने बड़ी शान्ति से अपनी सास को समझा दिया कि वह कुछ दिनों के लिए अपने भाई के पास जाना चाहती है। आप उसे एक चिट्ठी लिखवा दीजिए।

सास की मनचाही बात हाथ लग गई। उसने उसी समय स्त्री-जन-सुलभ नमक-मिर्च लगाकर अपने पति रामप्रसाद से कह दिया। उन्होंने पहले तो 'हां' 'हूं' की। फिर धर्म और

स्वभाव की साथिनी स्त्री के कहने-सुनने पर सुखदयाल को एक चिट्ठी लिख दी।

चार दिन बाद वहू चली जायगी—इसलिए वहू के साथ अधिक कठोरता का व्यवहार न करना चाहिए। यह सोचकर रामप्रसाद-दम्पती का व्यवहार पार्वती के साथ अपेक्षाकृत अच्छा हो गया है। घर के कामों के साथ अव उसे गालियों का बोझा नहीं सहना पड़ता। पर कर्जदारी के कारण का जिक्र यथा-नियम प्रतिदिन एक-दो बार हो ही जाता है।

× × ×

राधाचरण को मरे अभी पूरा एक वर्ष भी नहीं हुआ था। इस थोड़े समय में ही घर की हरेक चीज़ पार्वती के लिए बिलकुल बदल गई थी। घर के आदमियों के साथ घर के दरो-दीवार भी उसे काटने दौड़ते थे। मूल्य समाप्त न होने के कारण अभी तक उसके नाम कुछ समाचार-पत्र आते थे। पार्वती समय मिलने पर उन्हें पढ़ लेती थी। आज के "हित-कारी" में उसने "आवश्यकता" के स्तम्भ को बहुत ग़ौर से पढ़ा।

तीसरे दिन जवाब आ गया कि शनिश्चर की रात को सुखदयाल बहन को लेने के लिए आवेगा। बृहस्पतिवार को पत्र मिला था। पार्वती को केवल दो दिन का मेहमान समझ कर सास और ससुर का कठोर हृदय और ढीला पड़ गया। पार्वती की सेवा और उसके कभी न डिगनेवाले शील में उन्हें अब बहुत कुछ भलाई दिखाई देने लगी। विच्छेद के विचार

ने निस्सन्देह उनकी मानसिक कलुषता को बहुत कुछ दूर कर दिया।

काल-भगवान् किसी की उपेक्षा नहीं करते। सूर्य के रथ का धुरा कभी नहीं टूटता। काल-भगवान् के प्रधान सहचर सूर्यदेव सुखी, दुखी—सभी—को पीछे छोड़ते हुए रथ बढ़ाये चले ही जाते हैं। शनिश्चर की रात को सुखदयाल—दैन्य और दारिद्र्य की मूर्ति सुखदयाल—आ गया। बहन को गले लगाकर वह बहुत रोया। दूसरे दिन प्रातःकाल की ट्रेन से वह पार्वती को लेकर घर को रवाना हो गया।

पार्वती ने चलते समय केवल अपने पति की पुस्तकों का एक ट्रङ्क अपने साथ लिया। बाकी न कोई जेवर और न दो धोतियों को छोड़ कर कोई कपड़ा। भरा हुआ घर, जो उसके लिए पहले ही खाली हो चुका था, उसने भी खाली कर दिया। चलते समय सास ने ऊपरी मन से जल्द आने के लिए कहा और स्त्री-जन-सुलभ अश्रु-वर्षण का परिहास भी दिखाया। पार्वती ने निष्कपट मन से जिस समय सास के चरण छुए, उस समय गरम-गरम आंसुओं की कुछ बूंदों ने भी हरदेवी के चरण छूने में उसके साथ प्रतियोगिता की।

(५)

पार्वती के आने से सुखदयाल की गरीबी का—पर पैतृक और इसीलिए पक्का—घर स्वर्ग बन गया। उसके बालक, जो निर्धनता के कारण शिक्षा न पा सकते थे, बुआ पार्वती से पढ़ने लगे। सुखदयाल को बड़ी गहरी शान्ति उससे मिलती-

शिक्षा के साथ-साथ सिलाई का काम भी सीखने लगी। थोड़े दिनों में पार्वती और शान्ति को सुई के प्रताप से कुछ कम दो रुपये प्रतिदिन की आमदनी होने लगी। पार्वती के कहने पर सुखदयाल एक अच्छी गाय खरीद लाया। अब उसके घर में सब कुछ था—विद्या थी, धन था और गोरस था। सुखदयाल की स्त्री चमेली पार्वती को अपनी समृद्धि का मूल कारण समझती थी। वह उसे साक्षात् देवी समझती थी। प्रातःकाल उठकर उसके चरण छूती थी। घर का हर काम उसकी आज्ञा लेकर करती थी।

एक वर्ष बीत गया। पार्वती हिन्दू-गर्ल्स-स्कूल में हिन्दी पढ़ाती है। इसी वर्ष उसने प्रवेशिका परीक्षा पास कर ली है। पचास रुपया मासिक वेतन मिलता है। अब सुखदयाल के बालक, जो एक वर्ष पहले लावारिस और आवारा घूमते फिरते थे, साफ़ कपड़े पहनकर भले बालकों की तरह बगल में पुस्तकें दबाये स्कूल जाते हैं। लड़की शान्ति भी पर्वती के साथ स्कूल में काम करती है। देवी-स्वरूपिणी बहन पार्वती की बदौलत भाई सुखदयाल ने भी चपरासगिरी के कर्कश हाथों से छुटकारा पाकर सौदागरी की दूकान खोल ली है।

सुखदयाल का घर भी अच्छा खासा बालिका-विद्यालय था। मुहल्ले भर की छोटी-बड़ी अनेक लड़कियां स्कूल से इतर समय में यहां पढ़ने और सुई का काम सीखने आती थी। विद्यादान का द्वार सदा खुला रहता था। पार्वती के परोपकार आदि सद्गुणों की प्रशंसा मुहल्ले से निकल शहर भर में फैल

गई थी।

चार वर्ष और बीते, पार्वती ने प्राइवेट तौर पर पहली कक्षा में बी० ए० पास किया। रायपुर के कलेक्टर की पत्नी ने अपने हाथ से पार्वती की सफ़ेद साड़ी पर प्रतिष्ठा-सूचक मेडल लगाया। हिन्दू-गर्ल्स-स्कूल की प्रधान शिक्षयित्री (लेडी प्रिन्सिपल) के पद पर—जिसकी शोभा, उपयुक्त हिन्दू-पंडिता के न मिलने के कारण अब तक क्रिश्चियन लेडियां पढ़ाती रही थीं—पंडिता पार्वती का वरण किया गया। शहर भर में पार्वती का यशोगान होने लगा। वेतन भी एकदम २५०) हो गया।

(५)

रविवार का दिन था, स्कूल के बड़े कमरे में प्रबन्धकारिणी समिति के सभ्यों की अन्तरङ्ग-सभा हो रही थी। मेम्बर सभी स्त्रियां थीं। राय रामकिशोर बहादुर की पत्नी, जो स्कूल की ऑनरेरी सेक्रेट्री थीं, प्रबन्ध-सम्बन्धी अनेक विषय पेश कर रही थीं। रायबहादुर की पत्नी ने कहा—अब मैं आज की बैठक का अन्तिम विषय अर्थात् स्कूल के चपरासी के लिए आये हुए प्रार्थनापत्र पेश करती हूं। मेरी सम्मति में जिन लोगों के प्रार्थनापत्र हैं, उन्हें बिना देखे नौकर रखना ठीक न होगा। चपरासी बूढ़ा तो होगा ही; पर साथ ही साथ चिड़चिड़ा या अधिक कमज़ोर भी न होना चाहिए, और यह ऐसी बात है जो बिना देखे तय नहीं हो सकती। अब मैं इस विषय में आप की भी राय लेती हूँ (मतलब था प्रिन्सिपल पार्वती से) देवी आपकी क्या राय है।

उपस्थित अन्य तीन महिलाओं ने एक-स्वर से कहा—इस विषय में बाई जी की आज्ञानुसार ही काम होना चाहिए। क्योंकि बाई जी की आज्ञाएं मानने और दरवानी के लिए ही चपरासी की नियुक्ति होगी।

पार्वती ने अपने शान्त, प्रभा-पूर्ण मुख-कमल को खिलाते हुए कहा—मैं रायबहादुर की पत्नी से सहमत हूं। आदमी को देखकर ही रखना अच्छा होगा। मनुष्य के चेहरे से उसके गुण-दोषों का बहुत पता लग जाता है।

रायबहादुर की पत्नी ने सौजन्य दिखाते हुए लेडी प्रिन्सिपल का धन्यवाद किया और साथ ही सभा का कार्य भी समाप्त कर दिया।

(६)

कंगाल भारत की विभूति का कल्पित स्वप्न देखकर आज भी अनेक विदेशी चौंक उठते हैं। किन्तु जिन लोगों ने भारत के गांव देखे हैं, एक वस्त्रधारी कृश-काय अस्थि-चर्म्मावशिष्ट भारत-गौरव किसानों को देखा है, वे भारत की विभूति को खूब समझते हैं।

गर्ल्स-स्कूल में आठ रुपये की चपरासगिरी के लिए इतने आदमी आवेंगे—किसी को भी खयाल न था। अनेक बूढ़े आदमी पांत बांधे बैठे थे। रायबहादुर की पत्नी और सेकेण्ड मिस्ट्रेस सुशीला देवी ने उस भीड़ में से चार आदमियों को चुन लिया। इन्हीं में से एक को बड़ी बाई जी चुनेंगी। हिन्दू-गर्ल्स स्कूल में परदे और सदाचार का विशेष ध्यान रखा जाता है।

लेना पड़ा होगा।

मां, केवल डेढ़ सौ रुपये!

कहते-कहते बूढ़े के कोटर-लीन नेत्रों में आंसू भर आये।

अच्छा आप बाहर बैठिए।

बाकी तीन आदमियों में से एक आदमी चुन लिया गया। बूढ़ा रामप्रसाद उसी समय लेडी-प्रिंसिपल के बंगले पर पहुंचाया गया।

आठ रुपये की नौकरी के लिए आये हुए रामप्रसाद को बंगले के नौकरों ने जब मालिक की तरह ठहराया, तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ।

शाम को भोजनोपरान्त पार्वती ने कहा—

आप मुझे पहचानते हैं?

मां, आप स्कूल की बड़ी बाई हैं।

मैं आपके भतीजे की अभागिन स्त्री हूं।

बूढ़े की निद्रा टूट गई, उसे मूर्च्छा आने लगी। पार्वती की भतीजी शान्ति ने संभाल लिया।

पार्वती ने बहुत चाहा कि रामप्रसाद वहीं रहे, पर वह किसी तरह राजी न हुआ। आत्म-ग्लानि की तीव्र अग्नि में वह अन्दर-अन्दर जल रहा था। चलते समय पार्वती ने कभी कभी दर्शन देने का वचन ले लिया। फिर एक-एक हजार के दो नोटों को लिफाफे में बन्द करके बूढ़े ससुर के हाथ में दिया और बड़ी नम्रता से कहा—यह मिठाई मां जी को दे दीजिएगा और आप की याद [illegible] साथ जाएगा।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

आप एक प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार हैं। आपकी मौलिक प्रतिभा ने हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में पंजाब का मस्तक उन्नत किया है। कहानी और एकांकी दोनों के सृजन करनेवालों में आपका अन्यतम स्थान है। आपकी कृतियां अत्यन्त भाव और आदर से पढ़ी जाती हैं। उनकी लोकप्रियता असंदिग्ध है।

आप जालन्धर (पंजाब) निवासी हैं। वकालत तक आपने शिक्षा प्राप्त की है, किन्तु साहित्यिक प्रेरणाओं ने आपकी रुचि प्रेक्टिस की ओर नहीं होने दी। इसमें आपके भावमय और कलात्मक जीवन की ही विजय है।

हिन्दी में आने से पहले आप भी श्री प्रेमचन्द और श्री सुदर्शन की भान्ति उर्दू में नाम पैदा कर चुके थे, और उन दोनों की तरह हिन्दी में प्रवेश करते ही आप ने भी अपने लिए एक विशेष स्थान बना लिया है।

मध्यवर्ग के घरेलू जीवन का चित्र खींचना आप खूब जानते हैं। गृहस्थ और समाज की कुरीतियों की ओर स्पर्शी और तीखे व्यंग्य द्वारा ध्यान आकृष्ट करने में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी भाषा सरल, चुस्त और उर्दू की पुट लिये होती है और कथानक अत्यन्त रोचक और हृदयस्पर्शी। आपकी कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'निशानियां' आपकी प्रेम-कहानियों का सर्वोत्तम संग्रह है। स्वर्ग की झलक, छटा बेटा, और तूफ़ान से पहले—इत्यादि आपके एकांकी संग्रह बहुत प्रसिद्ध हैं।

पिंजरा

शान्ति ने ऊबकर काग़ज़ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उठ कर अनमन-सी कमरे में घूमने लगी। उसका मन स्वस्थ नहीं था, लिखते-लिखते उसका ध्यान बँट जाता था। केवल चार पंक्तियां वह लिखना चाहती थी उससे लिखा न जाता था। भावावेश में कुछ का कुछ लिख जाती थी। छः पत्र वह फाड़ चुकी थी, यह सातवां था।

घूमते-घूमते, वह चुपचाप खिड़की में जा खड़ी हुई। सन्ध्या का सूरज दूर पश्चिम में डूब रहा था। माली ने क्यारियों में पानी छोड़ दिया था और दिन-भर के मुरझाये फूल जैसे जीवन-दान पाकर खिल उठे थे। हल्की-हल्की ठंडी हवा चलने लगी थी। शान्ति ने दूर सूरज की ओर निगाह दौड़ाई—पीली-पीली सुनहरी किरणें जैसे डूबने से पहले उन छोटे-छोटे बच्चों के खेल में जी भर हिस्सा ले लेना चाहती थीं जो सामने के मैदान की हरी-भरी घास पर उन्मुक्त खेल रहे थे। सड़क पर दो कमीन युवतियां, हँसती, चुहलें करती, उछलती, कूदती चली जा रही थीं। शान्ति ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और फिर मुड़कर उसने अपने इर्द-गिर्द एक थकी हुई निगाह दौड़ाई—छत पर बड़ा पंखा धीमी आवाज़ से अनवरत चल रहा था। दरवाज़ों पर भारी पर्दे हिल रहे थे और भारी कौच और उन पर रखे हुए

रेशमी गद्दे, गलीचे और मध्य में रखे हुए छोटे-छोटे अठकोने मेज़ और उन पर पीतल के नन्हें-नन्हें हाथी और फूलदान—और उसने अपने आपको उस पक्षी-सा अनुभव किया जो विशाल, स्वच्छन्द आकाश के नीचे; खुली स्वतन्त्र हवा में आम की डाली से वंधे हुए पिंजरे में लटक रहा हो।

तभी नौकर उसके छोटे लड़के को जैसे वरवस खींचता-सा लाया। धोवी की लड़की के साथ वह खेल रहा था। आव देखा न ताव और शान्ति ने लड़के को पीट दिया—क्यों तू उन कमीनों के साथ खेलता है, क्यों खेलता है तू! इतने वड़े वाप का वेटा होकर! और उसकी आवाज़ चीख की हद को पहुंच गई। हैरान-से खड़े नौकर ने वढ़ कर जवर्दस्ती वच्चे को छुड़ा लिया। शान्ति जाकर धम से कौच में धँस गई और उसकी आंखों से अनायास ही आंसू वह निकले!

तव वहीं वैठे-वैठे उसकी आंखों के सामने अतीत के कई चित्र फिर गये!

\+ + +

उसके पति तव लांडरी का काम करते थे। वाइवल सोसाइटी के सामने जहां आज एक दन्दानसाज़ वड़े धड़ल्ले से लोगों के दांत उखाड़ने में निमग्न रहते हैं, उनकी लांडरी थी। आय अच्छी थी, पर ख़र्च भी कम न था। ३५ रुपया तो दूकान का किराया ही देना पड़ता था और फिर कपड़े धोने और इस्त्री करने के लिए जो तवेला ले रखा था, उसका किराया अलग था। इसके अतिरिक्त धोवियों को वेतन, कोयले, मसाला और

सौ दूसरे पचड़े ! इस सब खर्च की व्यवस्था करने के बाद जो थोड़ा बहुत बचता था, उससे बड़ी कठिनाई के साथ घर का खर्च चलता था और घर उन्होंने दूकान के पीछे ही महीलाल स्ट्रीट में ले रखा था।

महीलाल स्ट्रीट जैसी अब है वैसी तब भी थी। मकानों का रूप यद्यपि इन दस वर्षों में कुछ बदल गया है, किन्तु कुछ अधिक अन्तर नहीं आया। अब भी इस इलाके में कमीन बसते हैं, और तब भी वही बसते थे। सील भरी अंधेरी कोठरियां चमारों, धीवरों और शुद्ध हिन्दुओं का निवासस्थान थीं। एक ही कोठरी में रसोई, बैठक, शयन-गृह—और वह भी ऐसा, जिसमें सास-ससुर, बेटी-बहू, लड़कियां-लड़के, सब एक साथ सोते हों।

जिस मकान में शान्ति रहती थी, उसके नीचे टेंडी चमार अपने आठ लड़के-लड़कियों के साथ रहता था, दूसरी चौड़ी गली में मारवाड़ी की दूकान थी और जिधर दरवाज़ा था उधर भंगी रहते थे। उनके दरवाज़े से ज़रा ही परे भंगियों ने तन्दूर लगा रखा था जिसका धुआं सुबह-शाम उनकी रसोई में आ जाया करता था, जिससे शान्ति को प्रायः रसोई की खिड़की बन्द रखनी पड़ती थी। दिन-रात वहां चारपाइयां बिछी रहती थीं और कपड़ा बचाकर निकलना प्रायः असम्भव होता था।

गर्मियों के दिन थे और म्युनिसिपैलिटी का नल काफ़ी दूर अनारकली के पास था, इसलिए इन ग़रीब लोगों की सुविधा के लिए शान्ति ने अपने पति की सिफ़ारिश पर नीचे

ड्योढ़ी के नल से उन्हें पानी लेने की स्वीकृति दे दी थी। किन्तु जब उन्हें उस मकान में आये कुछ दिन बीते तो शान्ति को मालूम हो गया कि यह उदारता बहुत मंहगी पड़ेगी। एक दिन जब उसके पति नहाने के बाद साबुन की डिबिया नीचे ही भूल आये और शान्ति उसे उठाने गई तो उसने उसे नदारद पाया; फिर कुछ दिन बाद तौलिया ग़ायब हो गया, और इसी तरह दूसरे-तीसरे कोई न कोई चीज़ गुम होने लगी। हार कर एक दिन शान्ति ने अपने पति के पीछे पड़कर नल के टोंटी पर लकड़ी का छोटा-सा बक्स लगवा दिया और चाबी उसकी अपने पास रख ली।

दूसरे दिन, जब एक ही धोती से शरीर ढांपे वह पसीने से निचुड़ती हुई, चूल्हे के आगे बैठी रोटी की व्यवस्था कर रही थी तो उसने अपने सामने एक काली-सी लड़की को खड़ी पाया।

लड़की उसकी समवयस्क ही थी। रंग उसका बेहद काला था और शरीर पर उसने अत्यन्त मैली-कुचैली धोती और बंडी पहन रखी थी। वह अपने गहरे काले बालों में सरसों ही का तेल डालती होगी क्योंकि उसके मस्तक पर बालों के नीचे पसीने के कारण तेल में मिली हुई मैल की एक रेखा बन रही थी। चौड़ा-सा मुंह और चपटी-सी नाक! शान्ति के हृदय में क्रोध और घृणा का तूफ़ान उमड़ आया। आज तक घर में जमादारिन के अतिरिक्त नीचे रहनेवाली किसी कमीन लड़की को ऊपर आने का साहस न हुआ था और न स्वयं ही उसने किसी से बातचीत करने की कोशिश की थी।

लड़की मुस्करा रही थी, और उसकी आंखों में विचित्र-सी चमक थी।

क्या बात है—जैसे आंखों ही आंखों में शान्ति ने क्रोध से पूछा।

तनिक मुस्कराते हुए लड़की ने प्रार्थना की—बीबीजी! पानी लेना है।

हमारा नल भंगी चमारों के लिए नहीं!

हम भंगी हैं न चमार!

फिर कौन हो?

मैं, बीबीजी, सामने के पुजारी की लड़की···।

लेकिन शान्ति ने आगे न सुना था। उसे लड़की से बातें करते करते घिन आती थी। धोती के छोर से चाबी खोलकर उसने फेंक दी।

\+ + +

इस काले-कलोटे शरीर में दिल काला न था। और शीघ्र ही शान्ति को इस बात का पता चल गया। रोज़ ही पानी लेने के समय चाबी के लिए गोमती आती। गली में पूर्बियों का जो मन्दिर था, वह उसके पुजारी की लड़की थी। अमीरों के मन्दिरों के पुजारी भी मोटरों में घूमते हैं। यह मन्दिर था गरीब पूर्वियों का, जिनमें प्रायः सब चौकीदार, चपरासी, साईस अथवा मज़दूर थे। पुजारी का कुटुम्ब भी खुली गली के एक ओर भंगियों की चारपाइयों के सामने सोता था। और जब रात को कोई तांगा उधर गुज़रता तो प्रायः किसी न किसी की चारपाई उसके साथ घिसटती हुई चली जाती। मन्दिर में कुआं तो था, पर जब से इधर

नल आया उस पर डोल और रस्सी कभी नहीं रही और फिर जब समीप ही किसी की ड्योढ़ी के नल से पानी मिल जाय तो कुएं पर बाज़ू तोड़ने की क्या ज़रूरत है, इसलिए गोमती पानी लेने और कुछ पानी लेने के बहाने बातें करने रोज़ ही सुबह-शाम आ जाती। बटलोही नल के नीचे रख कर, जिसमें सदैव पान के कुछ पत्ते तैरा करते, वह ऊपर चली आती और फिर बातों-बातों में भूल जाती कि वह पानी लेने आई है और उस समय तक न उठती जब तक उसकी बुढ़िया दादी गली में अपनी चारपाई पर बैठी हुई चीख़-चीख़ कर गालियां देती हुई उसे न पुकारती।

इसका यह मतलब नहीं कि इस बीच में शान्ति और गोमती में मित्रता हो गई थी। हां, इतना अवश्य हुआ कि शान्ति जब रसोई में खाना बनाती अथवा अन्दर कमरे में बैठी कपड़े सीती तो उसको गोमती का सीढ़ियों पर बैठकर बातें करना बुरा नहीं लगता था। कई तरह की बातें होतीं—मुहल्ले के भंगियों की बातें, चमारों के घरेलू झगड़ों की बातें और फिर कुछ गोमती की निजी बातें। इस बीच में शान्ति को मालूम हो गया कि गोमती का विवाह हुए वर्षों बीत चुके हैं, पर उसने अपने पति की सूरत नहीं देखी। बेकार है, इस लिए न वह उसे लेने आता है और न उसके पिता उसे उसके साथ भेजते हैं।

कई बार छेड़ने की ग़र्ज़ से, और कई बार आनन्द मात्र लेने की ग़र्ज़ से शान्ति उससे उसके पति के सम्बन्ध में और उसके अपने मनोभावों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछती। उत्तर देते समय गोमती शर्मा जाती थी।

किन्तु इतना सब होते हुए भी उसकी जगह वहीं सीढ़ियों में ही बनी रही।

फिर किस प्रकार पुजारी की वह काली-कलूटी लड़की वहां से उठकर, उसके इतने समीप आ गई कि शान्ति ने एक बार अनायास उसे आलिंगन में लेकर कह दिया—आज से तुम मेरी बहन हुई गोमती—वह सब आज भी शान्ति को स्मरण था।

\+ + +

सर्दियों की रात थी और अनारकली में सब ओर धुआं-ही-धुआं हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे लाहौर के समस्त तन्दूरों, होटलों, घरों और कारख़ानों से सारा दिन उठनेवाले धुएं ने सांझ होते ही इकट्ठे होकर अनारकली पर आक्रमण कर दिया हो। शान्ति अपने नन्हें को कन्धे से लगाये, हाथों में कुछ हल्के-फुल्के लिफ़ाफ़े थामे क्रय-विक्रय करके चली आ रही थी। वह कई दिन के अनुरोध के बाद अपने पति को इधर ला सकी थी और उन्होंने जी-भर खाया-पिया और ख़रीद किया था। अनारकली के मध्य बंगाली रसगुल्लों की जो दूकान है, वहां से रसगुल्ले खाने को शान्ति का बड़ा मन होता था, पर उसके पति को कभी इतनी फ़ुर्सत ही न हुई थी कि वहां तक केवल रसगुल्ले खाने के लिए जा सकें। अस्पताल रोड के सिरे पर हलवाई के साथ चाटवाले की जो दूकान है वहां से चाट खाने को शान्ति की बड़ी इच्छा थी, पर चाट ऐसी निकम्मी चीज़ खाने के लिए काम छोड़कर जाने का अवकाश शान्ति के पति के पास कहां? कई दिनों से वह अपने उम्मी के लिए कुछ गर्म कपड़ों के टुकड़े

खरीदना चाहती थी। सर्दी बढ़ रही थी और उसके पास एक भी कोट न था। और फिर गर्म कपड़ा न सही, वह चाहती थी कि कुछ ऊन ही मोल ले ली जाय, ताकि नन्हें का स्वेटर बुन दिया जाय। पर उसके पति 'हूं'-'हां' करके टाल जाते थे, किंतु उस दिन वह निरन्तर महीने भर तक अनुरोध करने के बाद उन्हें अपने साथ अनारकली ले जाने में सफल हुई थी। और उस दिन उन्होंने जी-भर बंगाली के रसगुल्ले और चाटवाले की चटपटी चाट खाई थी, बल्कि बलुए में मोहन के पकौड़े और मटरोंवाले आलूओं के स्वाद भी चक्खे थे। फिर उम्मी के लिए कपड़ा भी खरीदा था और ऊन भी मोल ली थी और दो आने दर्जन ब्लेडोंवाली गुडविग की डिबिया तथा कालगेट साबुन की दो आने वाली एक टिकिया भी उन्होंने खरीदी थी। कई दिनों से वे उन्हीं पुराने ब्लेडों को शीशे के गिलास में तेज़ करके नहानेवाले साबुन ही से हजामत बनाते आ रहे थे और उस दिन शान्ति ने यह सब खरीदने के लिए उन्हें बस विवश कर दिया था। और दोनों जने यह सब खरीद कर खर्च करने के आनन्द की अनुभूति से पुलकित चले आ रहे थे।

दिसम्बर का महीना था और सूखा जाड़ा पड़ रहा था। शान्ति ने अपने सस्ते, पर गरम शाल को नन्हें के चारों ओर अच्छी तरह लपेटते हुए अचानक कहा—निगोड़ा सूखा जाड़ा पड़ रहा है। सुनती हूं नगर में बीमारी फैल रही है।

पर उसके पति चुपचाप अपनी धुएं से आकुल आंखों को रूमाल से मलते चले आ रहे थे।

शान्ति ने फिर कहा—हमारी अपनी गली में कई लोग बीमार हो गये हैं। परसों टेंडी चमार का लड़का निमोनिया से मर गया।

तभी शाल में लिपटा-लिपटा बच्चा हल्के-हल्के दो बार खांसा और शान्ति ने उसे और भी अच्छी तरह शाल में लपेट लिया।

उसकी बात को सुनी-अनसुनी करके उसके पति ने कहा—आज वेहद बदपरहेज़ी की है, पेट में सख्त गड़बड़ी हो रही है।

\+ \+ \+

घर आकर शान्ति ने जब लड़के को चारपाई पर लिटाया और मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसके बालों को पिछली तरफ़ किया तो वह चौंक कर पीछे हटी। उसने डरी हुई निगाहों से अपने पति की ओर देखा। वे सिर को हाथों से दबाये नाली पर बैठे थे।

उम्मी का माथा तो तवे की तरह तप रहा है—उसने बड़ी कठिनाई से गले को अचानक अवरुद्ध कर देनेवाली किसी चीज़ को बरबस रोक कर कहा।

लेकिन उसके पति को क़ै हुई।

शान्ति का कण्ठ अवरुद्ध-सा होने लगा था और उसकी आंखें भर-सी आई थीं, पर अपने पति को कै करते देख बच्चे का खयाल छोड़ वह उनकी ओर भागी। पानी लाकर उनको कुल्ला कराया। निढाल-से हो कर वे चारपाई पर पड़ गये पर कुछ ही क्षण बाद उन्हें फिर मतली हुई।

शान्ति के हाथ-पांव फूल गये। घर में वह अकेली। सास, मां पास नहीं, कोई दूसरा नाती-रिश्तेदार भी समीप नहीं और नौकर—नौकर रखने की गुंजाइश ही कभी नहीं निकली। वह कुछ क्षण के लिए घबरा गई। एक उड़ी-उड़ी-सी दृष्टि उसने अपने ज्वर से तपते हुए बच्चे और बदहज़मी से निढ़ाल पति पर डाली। अचानक उसे गोमती का खयाल आया। शान्ति अकेली कभी गली में नहीं उतरी थी, पर सब संकोच छोड़ वह भागी-भागी नीचे गई। अपनी कोठरी के बाहर की गली की ओर, मात्र ईटों के छोटे-से पर्दे की ओट, बने हुए रसोईघर में बैठी गोमती रोटी बेल रही थी और चूल्हे की आग से उसका काला मुख चमक-सा रहा था। शान्ति ने देखा—उसका बड़ा भाई अभी खाना खा कर उठा है। तब आगे बढ़ कर उसने इशारे से गोमती को बुलाया। तवे को नीचे उतार और लकड़ी को बाहर खींचकर गोमती उसी तरह भागी आई। तब विनीत-भाव से संक्षेप में शान्ति ने अपने पति तथा बच्चे की दशा का वर्णन किया और फिर प्रार्थना की कि वह अपने भाई से कहकर तत्काल किसी डाक्टर को बुला दे। उनकी लांडरी के साथ ही जिस डाक्टर की दूकान है, वह सुना है पास ही लॉज रोड पर रहता है, यदि वह आ जाय तो बहुत ही अच्छा हो। और फिर साड़ी के छोर से पाँच रुपये का एक नोट खोल शान्ति ने गोमती के हाथ में रख दिया कि फ़ीस चाहे पहले ही क्यों न देनी पड़े पर डाक्टर को ले अवश्य आये। और फिर चलते-चलते उसने यह भी प्रार्थना की कि रोटी पकाकर यदि सम्भव हो तो तुम भी ज़रा आ जाना, उम्मी......

शान्ति का गला भर आया । गोमती ने कहा—आप घबराएं नहीं, मैं अभी भाई को भेज देती हूं और मैं भी अभी आई । यह कह कर वह भागती-सी चली गई ।

शांति वापस मुड़ी, तो सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते उसने अनुभव किया कि शंका और भय से उसके पांव कांप रहे हैं और उसका दिल धक-धक कर रहा है ।

ऊपर जाकर उसने देखा कि उसके पति ऊपर से उतर रहे हैं । हाथ में उनके खाली लोटा है, चेहरा पहले से भी पीला हो गया है, और माथे पर पसीना छूट गया है ।

शान्ति के उड़े हुए चेहरे को देख कर उन्होंने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—घबराओ नहीं, सर्दियों में हैजा नहीं होता ।

शान्ति ने रोते हुए कहा—आप ऊपर क्यों गये, वहीं नाली पर बैठ जाते । किन्तु जब पति ने नाली की ओर और फिर चारपाई पर पड़े हुए बीमार बच्चे की ओर इशारा किया, तो शान्ति चुप हो गई । उसने पहले सहारा देकर पति को बिस्तर पर लिटाया फिर नाली पर पानी गिराया, फिर दूसरे कमरे में बिस्तर बिछा, बच्चे को उस पर लिटा आई । तभी गोमती आ गई । खाना तो सब खा चुके थे, अपने हिस्से का आटा उठा, आग बुझा, वह भाग आई थी ।

शान्ति ने कहा—मैं उम्मी को उधर कमरे में लिटा आई हूं । मुझे डर है उसे सर्दी लग गई है । सांस उसे और भी कठिनाई से आने लगी है और खांसी भी बढ़ गई है । निचली कोठरी में पड़े हुए पुराने लिहाफ़ से कपड़े ले लो और अंगीठी

में कोयले डाल उसकी छाती पर ज़रा उससे सेंक दो। इनके पेट में गड़बड़ है। मैं इधर इसका कुछ उपचार करती हूं। कुछ नहीं तो गर्म पानी करके बोतल ही फेरती हूं।

गोमती ने कहा—इन्हें, बीबी जी! कोई हाज़मे की चीज़ दो। हमारे घर तुम्मे की अजवाइन है। मैं उसमें से कुछ लेती आई हूं, जब तक डाक्टर आता है उसे ही ज़रा गर्म पानी के साथ इन्हें दे दो।

बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के शान्ति ने मैली सी पुड़िया में बंधी काली-सी अजवाइन ले ली और गोमती अंगीठी में कोयले डाल नीचे कपड़े लेने भाग गई।

\+ \+ \+

बाहर शाम बढ़ चली थी। वहीं कमरे के अंधेरे में बैठे-बैठे शान्ति की आंखों के आगे चिन्ता के वे सब दिन-रात फिर गये। उसके पति को हैज़ा तो न था किन्तु गैस्ट्रो ऐन्टिराइटिस (Gastro Enteritis) तीव्र क़िस्म का था। डाक्टर के आने तक शान्ति ने गोमती के कहने पर उन्हें तुम्मे की अजवाइन दी थी, प्याज़ भी सुंघाया था और गोमती अंगीठी उठाकर दूसरे कमरे में बच्चे की छाती पर सेंक देने चली गई थी। डाक्टर के आने पर मालूम हो गया था कि उसे निमोनिया हो गया है और अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

शान्ति अपने पति और अपने बच्चे, दोनों का एक साथ कैसे उपचार करती! उसने अपनी विवशता से गोमती की ओर देखा। पर उसे होंठ हिलाने की आवश्यकता न पड़ी, बच्चे की सेवा-शुश्रूषा का समस्त भार गोमती ने अपने कन्धों पर ले लिया

शान्ति को मालूम भी न हुआ कि वह कब घर जाती है, कब घर वालों को खाना खिलाती है या खाती है या खिलाती खाती भी है या नहीं। उसने तो जब देखा उसे छाया की भांति बच्चे के पास पाया। कई दिन तक एक ही जून खाकर गोमती ने बच्चे की देख-भाल की थी।

+++ +++ +++

दोपहर का समय था, उसके पति दूकान पर गये हुए थे। उम्मी को भी अब आराम था और वह उसकी गोद से लगा सोया पड़ा था और उसके पास ही फ़र्श पर टाट बिछाये, गोमती पुराने ऊन के धागों से स्वेटर बुनना सीख रही थी। इतने दिनों की थकी-हारी उनींदी शान्ति की पलकें धीरे-धीरे बन्द हो रही थीं। वह उन्हें खोलती थी पर वे फिर बन्द हो हो जाती थीं। आख़िर वह वैसे ही पड़ी-पड़ी सो गई। जब वह फिर उठी तो उसने देखा, उम्मी रो रहा है, और गोमती उसे बड़े प्यार से सुरीली आवाज़ में थपक-थपक कर लोरी दे रही है। शान्ति ने फिर आंखें बन्द कर लीं। उसने सुना—गोमती धीमे-धीमे स्वर से गा रही थी—

आ री कक्को, जा री कक्को, जङ्गल पक्को बेर
भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा!

और फिर :

आ री चिड़ैया! दो पप्पड़ा पकाए जा
भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा!

बच्चा चुप कर गया था। लोरी समाप्त करके उसने बच्चे

को गले से लगा कर चूम लिया। शान्ति ने अर्ध-निमीलित आंखों से देखा कि बच्चे के पीले ज़र्द सूखे से मुख पर गोमती का काला स्वस्थ मुख झुका हुआ है। सुख के आंसू उसकी आंखों में उमड़ आये। उसने उठ कर गोमती से बच्चे को ले लिया और जब वह फिर टाट पर बैठने लगी तो दूसरे हाथ से शान्ति ने उसका हाथ पकड़ चारपाई पर बिठाते हुए, उसे अपने बाजू से बांध लिया और कहा—आज से तुम मेरी बहिन हुई गोमती।

\+ \+ \+

आंखें बन्द किये शान्ति इन्हीं स्मृतियों में गुम थी, उसकी आंखों से चुपचाप आंसू बह रहे थे कि अचानक उसके पति अन्दर दाखिल हुए। किसी ज़माने में लाँडरी चलानेवाले और समय पड़ने पर, स्वयं अपने हाथ से इस्त्री गरम करके कपड़ों को प्रेस करने में भी हिचकिचाहट न करने वाले ला० दीन-दयाल और लाहौर की प्रसिद्ध फ़र्म 'दीनदयाल एण्ड सन्ज़' के मालिक प्रख्यात शेयर-ब्रोकर लाला दीनदयाल में महान अन्तर था। इस दस वर्ष के समय में उनके बाल यद्यपि पक गये थे, किन्तु शरीर कहीं अधिक स्थूल हो गया था। ढीले-ढीले और प्रायः लाँडरी के मालिक होते हुए भी मैले कपड़े पहनने की जगह अब उन्होंने अत्यन्त बढ़िया किस्म का रेशमी सूट पहन रखा था और पाओं में श्वेत रेशमी जुराबें तथा काले हल्के सेंडल पहने हुए थे।

शान्ति ने झट रूमाल से आंखें पोंछ लीं।

बिजली का बटन दबाते हुए उन्होंने कहा—यहां अंधेरे में क्या पड़ी हो। उठो बाहर बाग़ में घूमो-फिरो और फिर बोले—इन्द्रानी का फ़ोन आया था कि बहिन यदि चाहें तो आज सिनेमा देखा जाय।

बहिन—दिल ही दिल में विषाद से शान्ति मुस्कराई और उसके सामने एक ओर काली-कलूटी-सी लड़की का चित्र खिंच गया जिसे कभी उसने बहिन कहा था। किंतु प्रकट उसने केवल इतना कहा—मेरी तबीयत ठीक नहीं!

मुंह फुलाए हुए ला० दीनदयाल बाहर चले गये।

तब आंखों को फिर एक बार पोंछ कर और तनिक स्वस्थ होकर, शान्ति मेज़ के पास आई और कुर्सी पर बैठ, पैड अपनी ओर को खिसका, कलम उठा कर उसने लिखा—

बहिन गोमती,

तुम्हारी बहिन अब बड़ी बन गई है। बड़े आदमी की बीबी है। बड़े आदमियों की बीबियां अब उसकी बहनें हैं। पिंजरे में बन्द पक्षी को कब इजाज़त होती है कि स्वच्छन्द, स्वतन्त्र विहार करने वाले अपने हमजोलियों से मिले? मैंने तुम्हें कल फिर आने के लिए कहा था; पर अब तुम कल न आना। अपनी इस वन्दिनी बहिन को भूलने की कोशिश करना।

शान्ति

इस बार उसने एक पंक्ति भी नहीं काटी और न काग़ज़ ही फाड़ा। हां, एक बार लिखते-लिखते फिर आंखें भर आने से जो एक-दो आंसुओं की बूंदें पत्र पर अनायास ही गिर पड़ीं

उन्हें उसने ब्लाटिंग-पेपर से सुखा दिया था। फिर पत्र को लिफ़ाफ़े में बन्द करके उसने नौकर को आवाज दी और उसके हाथ में लिफ़ाफ़ा देकर कहा कि महीलाल स्ट्रीट में पूर्वियों के मन्दिर के पुजारी की लड़की गोमती को दे आओ। और फिर समझाते हुए कहा—गोमती कुछ ही दिन हुए अपनी ससुराल से आई है।

पत्र लेकर नौकर चला ही था कि शान्ति ने उसे फिर आवाज़ दी और पत्र उसके हाथ से लेकर फाड़ डाला। फिर धीरे से उसने कहा—तुम गोमती से कहना कि बीबी अचानक आज मैके जा रही हैं और दो महीने तक वापस न लौटेंगी।

यह कह कर वह फिर खिड़की में जा खड़ी हुई और अस्त हो जानेवाले सूरज के स्थान पर ऊपर की ओर बढ़ते हुए अंधेरे को देखने लगी।

+ + +

बात इतनी ही थी कि आज दोपहर को जब वे ब्रिज खेल रहे थे तब नौकर ने आकर खबर दी थी कि महीलाल स्ट्रीट के पुजारी की लड़की गोमती आई है। तब खेल को बीच ही में छोड़ कर, और भूल कर कि उसके पार्टनर रायसाहब लाला बिहारीलाल हैं, वह भाग गई थी और उसने गोमती को अपनी भुजाओं में भींच लिया था और फिर वह उसे अपने कमरे में ले गई थी। तब दोनों बहुत देर तक अपने दुःख-सुख की बातें करती रही थीं। शान्ति ने जाना था कि किस प्रकार गोमती का पति काम करने लगा, उसे ले गया और उसे चार बच्चों

बिजली का बटन दबाते हुए उन्होंने कहा—यहां अंधेरे में क्या पड़ी हो। उठो बाहर बाग़ में घूमो-फिरो और फिर बोले—इन्द्रानी का फ़ोन आया था कि बहिन यदि चाहें तो आज सिनेमा देखा जाय।

बहिन—दिल ही दिल में विषाद से शान्ति मुस्कराई और उसके सामने एक और काली-कलूटी-सी लड़की का चित्र खिंच गया जिसे कभी उसने बहिन कहा था। किंतु प्रकट उसने केवल इतना कहा—मेरी तबीयत ठीक नहीं!

मुंह फुलाए हुए ला० दीनदयाल बाहर चले गये।

तब आंखों को फिर एक बार पोंछ कर और तनिक स्वस्थ होकर, शान्ति मेज़ के पास आई और कुर्सी पर बैठ, पैड अपनी ओर को खिसका, कलम उठा कर उसने लिखा—

बहिन गोमती,

तुम्हारी बहिन अब बड़ी बन गई है। बड़े आदमी की बीबी है। बड़े आदमियों की बीबियां अब उसकी बहनें हैं। पिंजरे में बन्द पक्षी को कब इजाज़त होती है कि स्वच्छन्द, स्वतन्त्र विहार करने वाले अपने हमजोलियों से मिले? मैंने तुम्हें कल फिर आने के लिए कहा था; पर अब तुम कल न आना। अपनी इस बन्दिनी बहिन को भूलने की कोशिश करना।

शान्ति

इस बार उसने एक पंक्ति भी नहीं काटी और न काग़ज़ ही फाड़ा। हां, एक बार लिखते-लिखते फिर आंखें भर आने से जो एक-दो आंसुओं की बूंदें पत्र पर अनायास ही गिर :

सुभद्राकुमारी चौहान

हिन्दी साहित्य की कलामयी तारिकाओं में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का विशेष स्थान है। आपने कविताएं भी लिखी हैं और कहानियां भी; दोनों में आपके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट है। आपकी भाषा बहुत सरल होती है और उसमें पाठक के अन्तरतम भावों का एक तूफ़ान लादने की अपूर्व क्षमता रहती है। "झांसी की रानी" को पढ़कर किस के रुधिर में उफ़ान न आ जाएगा। इसके साथ-साथ आपने अनेक मधुर और कोमल रचनाएं भी की हैं। इसी कारण साहित्य में आप महाकाली और कल्याणी दोनों रूपों में प्रसिद्ध हैं। आपकी कहानियों में स्वाभाविकता, रोचकता और सरलता रहती है। गहरी और वास्तविक अनुभूति आपके हृदय का विशेष गुण है। यही अनुभूति आपके कथानक तथा पात्रों में एक अन्यतम प्रकार की सजीवता भर देती है। "बिखरे मोती" नाम से आपकी कहानियों का एक सुन्दर संग्रह प्रसिद्ध है। इसपर आपको सेकसरिया-पुरस्कार मिला था।

आपका जन्म संवत् १९६१ में प्रयाग में हुआ था। आपके पिता का नाम ठाकुर रामनाथसिंह जी था। आपका विवाह जबलपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री लक्ष्मणसिंह जी से हुआ था। तीन वर्ष हुए एक आकस्मिक दुर्घटना से आपका देहान्त हो गया। आपके देहावसान से हिन्दी साहित्य को एक नितान्त क्षति पहुंची है।

की मां वना दिया और गोमती ने उम्मी का और दूसरे वच्चे
का हाल पूछा था। ला० दीनदयाल इस बीच में कई वार बुलाने
आये थे, पर वह न गई थी और जव दूसरे दिन आने का
वादा ले कर उसने गोमती को विदा किया था तो उसके पति ने
कहा था—तुम्हें शर्म नहीं आती, उस उजड्ड और गँवार औरत
को लेकर तुम वैठी रहीं, तुम्हें मेरी इज्जत का ज़रा भी ख़याल
नहीं। उसे वगल में लिये उन सव के सामने गुज़र गई
रायसाहव और उनकी पत्नी हँसने लगे और आख़िर प्रतीक्षा
कर करके चले गये.........

इसके वाद उन्होंने और भी वहुत कुछ कहा था, लेकिन
शान्ति ने तो फैसला कर लिया था कि वह पिंजरे को पिंजरा
ही समझेगी और उड़ने का प्रयास न करेगी।

———

सुभद्राकुमारी चौहान

हिन्दी साहित्य की कलामयी तारिकाओं में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का विशेष स्थान है। आपने कविताएं भी लिखी हैं और कहानियां भी; दोनों में आपके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट है। आपकी भाषा बहुत सरल होती है और उसमें पाठक के अन्तरतम भावों का एक तूफ़ान लादने की अपूर्व क्षमता रहती है। "झांसी की रानी" को पढ़कर किस के रुधिर में उफ़ान न आ जाएगा। इसके साथ-साथ आपने अनेक मधुर और कोमल रचनाएं भी की हैं। इसी कारण साहित्य में आप महाकाली और कल्याणी दोनों रूपों में प्रसिद्ध हैं। आपकी कहानियों में स्वाभाविकता, रोचकता और सरलता रहती है। गहरी और वास्तविक अनुभूति आपके हृदय का विशेष गुण है। यही अनुभूति आपके कथानक तथा पात्रों में एक अन्यतम प्रकार की सजीवता भर देती है। "बिखरे मोती" नाम से आपकी कहानियों का एक सुन्दर संग्रह प्रसिद्ध है। इसपर आपको सेकसरिया-पुरस्कार मिला था।

आपका जन्म संवत् १९६१ में प्रयाग में हुआ था। आपके पिता का नाम ठाकुर रामनाथसिंह जी था। आपका विवाह जबलपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री लक्ष्मणसिंह जी से हुआ था। तीन वर्ष हुए एक आकस्मिक दुर्घटना से आपका देहान्त हो गया। आपके देहावसान से हिन्दी साहित्य को एक नितान्त क्षति पहुंची है।

ग्रामीणा

[१]

पंडित रामधन तिवारी को परमात्मा ने सब कुछ दिया था किन्तु सन्तान के बिना उनका घर सूना था। धन-धान्य से भरा-पूरा घर उन्हें जंगल की तरह जान पड़ता। संतान की लालसा से उन्होंने न जाने कितने जप-तप और विधान करवाये और अन्त में उनकी ढलकती उमर में पुत्र तो नहीं पर उनके यहां एक पुत्री का जन्म हुआ। इस समय तिवारीजी ने खूब खुले-हाथों खर्च किया। सारे गांव को प्रीति-भोज दिया। महीनों घर में ढोलक ठनकती रही। कन्या ही सही पर इसके जन्म ने तिवारीजी के निःसन्तान होने के कलंक को धो दिया था। कन्या का रंग गोरा चिट्टा, आंखें बड़ी बड़ी, चौड़ा माथा और सुन्दर नासिका थी। उसके बाल घने, काले और असंख्य नन्हें-नन्हें छल्लों की भांति सिर पर बड़े ही सुहावने लगते थे। उसका नाम रखा गया सोना। सोना का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से होने लगा।

जब सोना सात साल की हुई तो घर ही में एक मास्टर लगाकर तिवारीजी ने सोना को हिन्दी पढ़वाना प्रारम्भ किया और थोड़े ही समय में सोना ने रामायण, महाभारत इत्यादि धार्मिक पुस्तकें पढ़ ली। गांव के सभी लोगों ने सोना

की कुशाग्र बुद्धि की तारीफ़ की। इसके आगे अधिक पढ़ाकर तिवारी जी को कन्या से कुछ नौकरी तो करवानी न थी, इसलिए सोना का पढ़ना बन्द करवा दिया।

अब सोना नौ साल की सुकुमार सुन्दर बालिका थी। उसकी सुन्दरता और सुकुमारता देखकर गांववाले कहते—तिवारीजी! तुम्हारी लड़की तो देहात के लायक नहीं है। इसका विवाह तो भाई! कहीं शहर में ही करना। सुनते हैं शहर में बड़ा आराम रहता है।

इधर तिवारीजी की बहिन जानकी जिसका विवाह तो गांव में ही हुआ था, किन्तु कुछ दिन से वह शहर में जाकर रहने लगी थी। जब कभी शहर से चौड़े किनारे की सफ़ेद साड़ी, आधी बांह का लेस लगा हुआ जाकेट, टिकली की जगह माथे पर लाल ईंगुर की बिन्दी और पैरों में काले काले स्लीपर पहिन कर आती तो सारी गांव की स्त्रियां उसे देखने को दौड़ आतीं। गांव के तरुण जीवन में उसका आदर था और बूढ़ों की आंखों में वह खटकती थी। फिर भी सबके लिए वह नई चीज़ थी। जानकी के पति नारायण ने भी मिल में नौकरी कर ली थी। उसे २०) रुपये माहवार मिलते थे। वह अब देहाती न था, सोलह आने शहर का बाबू बन गया था। धोती की जगह ढीला पाजामा, कुरते की जगह कमीज़, वास्कट और कोट पहनता, पगड़ी की जगह काली टोपी और पैरों में पम्प-शू पहनता था। जब कभी गांव में आता तो कान में इत्र का फाया ज़रूर रहता, कभी हिना कभी खस की मस्त खुशबू से बेचारे देहाती हैरान हो

जाते। उन्हें अपने जीवन से शहर का जीवन बड़ा ही सुखमय और शान्तिदायक मालूम होता।

[२]

इन सब बातों को देखकर और सोना की सुकुमारता को देखते हुए सोना की मां नन्दो ने निश्चय कर लिया था कि मैं अपनी सोना का विवाह शहर में ही करूंगी। मेरी सोना भी पैरों में पतले-पतले छल्ले और काले-काले स्लीपर पहनेगी। चौड़े किनारे की सफेद साड़ी और लेस लगा हुआ जाकेट पहिनकर वह कितनी सुन्दर लगेगी इसकी कल्पना मात्र से ही नन्दो हर्ष से विह्वल हो जाती। किन्तु सोना को कुछ ज्ञान न था, वह तो अपने देहाती जीवन में ही मस्त थी। वह दिनभर मधुबाला की तरह स्वच्छन्द फिरा करती। कभी-कभी समय पर खाना खाने आ जाती और कभी-कभी तो खेल में खाना भी भूल जाती। सुन्दर चीजें इकट्ठी करने और उन्हें देखने का उसे व्यसन सा था। गांव में अपने जोड़ की कोई लड़की उसे न मिलती इसलिए किसी लड़की से उसका अधिक मेल-जोल न था। नन्दो को सोना की यह स्वच्छन्द-प्रियता पसन्द न थी। किन्तु वह सोना को दबा भी नहीं सकती थी। जब वह कभी सोना को इसके लिए कुछ कहती तो तिवारीजी उसे आड़े-हाथों लेते, कहते—लड़की है, पराये घर तो उसे जाना ही पड़ेगा। क्यों उसके पीछे पड़ी रहती हो। जितने दिन है खेल खा लेने दो। कुछ जन्म भर तुम्हारे घर थोड़े रहेगी। लाचार नन्दो चुप हो जाती।

धीरे-धीरे सोना ने बारह वर्ष पूरे करके तेरहवें में पैर रखा। किन्तु तिवारीजी का इस तरफ ध्यान ही न था। एक दिन नन्दो ने उन्हें छेड़ा—सोना के विवाह की भी कुछ फ़िकर है ?

तिवारीजी चौंक से उठे, बोले—सोना का विवाह ? अभी वह है कै साल की ?

किन्तु यह कितने दिनों तक चल सकता था। लड़की का विवाह तो करना ही पड़ता है। वैसे तो गांव में ही कई ऐसे लड़के थे जिनसे सोना का विवाह हो सकता था, किन्तु नन्दो और तिवारीजी दोनों ही सोना का विवाह शहर में करना चाहते थे। शहर के जीवन का सुनहला सपना रह-रह के उनकी आंखों में छा जाता था। उन्होंने जानकी और नारायण से कोई योग्य वर तलाश करने के लिए कहा।

इधर सोना बारह साल की हो जाने पर भी, निरी बालिका ही थी। अब भी वही राजा-रानी का खेल खेला जाता। सुन्दर फूल पत्तियां अब भी इकट्ठी की जातीं और तितलियों के पीछे अब भी उसी प्रकार दौड़ लगाती। सोना के अङ्ग प्रत्यङ्ग में धीरे-धीरे यौवन का प्रवेश आरम्भ हो चुका था, किन्तु सोना को इसका ज्ञान न था। उसके स्वभाव में अब भी वही लापरवाही, अल्हड़पन और भोलापन था, जो आठ साल की बालिका के स्वभाव में मिलेगा।

[३]

सोना का विवाह निश्चित हो गया। वर की आयु २२ या २३ साल की थी। वह सुन्दर, स्वस्थ और चरित्रवान् नवयुवक था।

एक प्रेस में नौकरी करता था, ७५) मासिक वेतन पाता था। घर में एक बूढ़ी मां को छोड़ कर और कोई न था। विहार के रहने वाले थे। कुछ ही दिनों से यू० पी० में आये थे। परदा के बड़े पक्षपाती और पुरानी रूढ़ियों के कायल थे। नाम था विश्वमोहन। जब तिवारी जी ने विश्वमोहन और उनके घर को देखा तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। विश्वमोहन बाबू पूरे साहब देख पड़ते थे। उनके घर में खिड़की और दरवाज़ों पर चिकें पड़ी हुई थीं। ज़मीन पर एक बड़ी दरी पड़ी थी जिसके बीच में एक गोल मेज़ थी। मेज़ के आस-पास कई कुर्सियां पड़ी थीं। जब विश्वमोहन ने तिवारी जी से चाय पीने का आग्रह किया और तिवारी जी को उनके आग्रह से चाय पीना ही पड़ा तो वहां का साज-सामान देखकर तिवारी जी चकित हो गये। हर्ष से उनकी आंखें चमक उठीं। सुंदर-सुंदर प्यालों में मेज़ पर चाय पीने का तिवारी जी के जीवन में पहला ही अवसर था। मेज़ पर चाय पीने के बाद तिवारी जी ने दो गिन्नी बरीछा में देकर शादी पक्की कर ली। रास्ते में नारायण बोला—कहो तिवारीजी, है न लड़का हज़ारों में एक? है कोई तुम्हारे गांव में ऐसा? जब कपड़े पहन कर हैट लगा कर निकलता है तब कोई नहीं कह सकता कि साहब नहीं है। सब लोग झुक कर सलाम करते हैं। घर में देखा? कितना परदा है। सब खिड़की दरवाज़ों पर चिकें पड़ी हैं। इनकी मां बूढ़ी हो गई हैं। पर क्या मजाल कि कोई परछाईं भी देख ले। दोनों समय चाय पीते हैं, कुर्सियों पर बैठते हैं।

तिवारी जी ने हर्षोन्मत्त होकर कहा—भाई नारायण ! हम तुम्हारे इस उपकार के सदा आभारी रहेंगे। हमारे ढूंढे तो ऐसा घर-वर कभी न मिलता। हम देहात के रहनेवाले शहर का हाल-चाल क्या जानें ? पर तुमने मेरी सोना को अपनी लड़की सरीखी समझकर जो उसके लिए इतनी दौड़धूप की है और ऐसा अच्छा जोड़ मिला दिया है, इस उपकार का फल तुम्हें ईश्वर देगा।

नारायण—अच्छा, तिवारीजी ! अब जाकर विवाह की तैयारी करो। देखना इन्हें खाने-पीने का कुछ कष्ट न होने पावे। शहर के आदमी हैं। सब तकलीफें सह लेंगे पर भूख नहीं सह सकेंगे। खाते भी अच्छा हैं, देहात की मिठाई इन्हें अच्छी न लगेगी, कोई शहर का हलवाई लेजाकर मिठाई बनवा लेना, समझे।

तिवारी जी खुशी-खुशी घर लौटे। घर आकर जब उन्होंने नन्दो के सामने वर के रूप और गुण का बखान किया तो नन्दो फूली न समाई। वह जैसा घर-वर सोना के लिए चाहती थी ईश्वर ने उसकी साध पूरी कर दी। इस कृपा के लिए उसने परमात्मा को शतशः धन्यवाद दिये और नारायण को उसने कोटि-कोटि मन से आशीर्वाद दिया, जिसने इतनी दौड़-धूप करके मन-चाहा घर और वर सोना के लिए खोज दिया था।

सोना ने जब सुना कि उसका विवाह हो रहा है तब वह दौड़कर आई। उसने मां से पूछा—मां ! विवाह कैसा होता है और क्यों होता है ?

मां के सामने यह बड़ा जटिल प्रश्न था। वह समझ ही न

सकी कि इसका क्या उत्तर दे, किन्तु चतुर जानकी ने तुरन्त बात बना ली, बोली—सोना ! विवाह होने पर अच्छे-अच्छे गहने कपड़े मिलते हैं इसीलिए विवाह होता है।

सोना—बुआ जी ! फिर क्या होता है ?

जानकी—फिर सास के घर जाना पड़ता है सो मैं तुझे अपने साथ ले चलूंगी।

—सो तो मैं पहले ही से जानती थी, बुआ जी ! कि विवाह करने पर सास के घर जाना पड़ता है। पर मैं कहीं न जाऊंगी, अभी से कहे देती हूं। विवाह करो चाहे न करो—कहती हुई सोना खेलने चली गई। नन्दो का मातृ-प्रेम आंखों में आंसू बनकर उमड़ आया, बोली—अभी बचपन है, बड़ी होगी तब समझेगी।

जानकी—फिर तो ससुराल से एक-दो दिन के लिए भी मायके आना कठिन हो जायगा। भौजी ! देखो न मैं ही चार छः दिन के लिए आती हूं तो रात-दिन वहीं की फिकर लगी रहती है। जहां गृहस्थी का झंझट सिर पर पड़ा तब खेलना-कूदना भूल जाता है। जब तक विवाह नहीं होता तभी तक का खेलना खाना समझो।

नन्दो—जानकी-दीदी ! तुम लोगों की कृपा से मेरी सोना सुखी रहे। जैसे उसका नाम सोना है वैसे ही उसके जीवन में सोना बरसता रहे।

विवाह गांव भर में एक नई बात थी। इस विवाह में मंगलामुखी के स्थान पर आगरे से भजन-मण्डली आई थी जो उपदेश के अच्छे-अच्छे भजन गाकर सुनाया करती थी। गहने, कपड़े सब नये फ़ैशन के थे। लहंगों का स्थान साड़ियों ने ले लिया था। जूते थे, मौजे थे, रुमाल थे, पाउडर की डिब्बी, सुगन्धित तेल और भी न जाने क्या-क्या था जिनकी नन्दो और जानकी ने कभी कल्पना तक न की थी। गांव की औरतों को नन्दो बड़ी खुशी-खुशी सब चीजें दिखाती। देखनेवाली सोना के भाग्य की सराहना करती हुई लौट जातीं। उनकी आंखों में आज सोना से अधिक सौभाग्यवती कोई न थी। जिस दिन सोना को ससुराल के सब गहने-कपड़े पहिनाकर नन्दो ने पुत्री का सौन्दर्य निहारा तो उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। किसी की नज़र न लग जाय इस डर से उसने छिपाकर बालों के नीचे एक काजल का टीका लगा दिया। जिसने सोना को देखा वही क्षण भर तक उसे देखता रहा। सोना सचमुच उस समय सोना ही लगती थी।

विदा का समय आया। मां-बेटी खूब रोईं। जब सोना तिवारी जी की कमर से लिपटकर रोने लगी तो तिवारीजी का भी धैर्य जाता रहा। वे भी ज़ोर से रो पड़े। सोना विदा हो गई। विदा के बाद तिवारी जी को पुत्री के बिछोह का दुःख भी था, साथ ही साथ आत्मसन्तोष भी कि पुत्री अच्छे घर ब्याही गई है, सुख से रहेगी।

सोना ससुराल पहुंची, रास्ते भर तो जैसे-तैसे, किन्तु घर

पहुंचने पर जब वह एक कोठरी में बन्द कर दी गई और बाहर की साफ़ हवा उसे दुर्लभ हो गई तो उसे ससुराल का जीवन बड़ा ही कष्टमय मालूम हुआ। अब उसे गहने कपड़े न सुहाते थे। रह-रहकर कोठरी के बाहर निकलकर साफ़ हवा में आने के लिए उसका जी तड़पने लगा। स्वच्छन्द हवा में विचरने-वाली बुलबुल की जो दशा पिंजरे में बन्द होने के बाद होती है वही दशा सोना की थी। चार ही छै दिन में उसके गुलाबी गाल पीले पड़ गये, आंखें भारी रहने लगीं। एक दिन विश्वमोहन आफ़िस चले गये थे, सास सो रही थीं, सोना आंगन के बाहर दरवाज़े के पास चली आई। चिक को ज़रा हटाकर बाहर देखा। यहां देहात की सुन्दरता तो न थी फिर भी साफ़ हवा अवश्य थी। इतने दिनों के बाद क्षणभर के ही लिए क्यों न हो बाहर की हवा लगते ही सोना का चित्त प्रफुल्लित हो गया किन्तु उस समय एक बुढ़िया उधर से निकली। सोना को उसने चिक के पास देख लिया। आकर विश्वमोहन की मां से उसने कहा—बहू को ज़रा सम्हालकर रखा करो। न साल, न छः महीने अभी से यहीं होकर बाहर झांकती है। यह लच्छन कुलीन घर की बहू-बेटियों को शोभा नहीं देते। बिस्सु की अम्मां! तुम्हारी इतना उमर हो गई आज तक किसी ने परछाईं तक नहीं देखी और तुम्हारी ही बहू के ये लच्छन! कलजुग इसी को कहते हैं।

बुढ़िया तो उपदेश देकर चली गई पर सोना को उस दिन बड़ी डांट पड़ी। उसकी समझ में न आता था कि चिक के पास आकर उसने कौन-सा अपराध कर डाला। फिर भी बेचारी ने

नतमस्तक सभी झिड़कियां सह लीं और दूसरा चारा ही क्या था! इसी बीच तिवारी जी जब सोना को लेने आये तो उसे ऐसा जान पड़ा जैसे किसी ने डूबते से उबार लिया हो। पिता को देखकर वह बड़ी खुश हुई। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अब के जाऊंगी तो फिर यहां कभी न आऊंगी।

[५]

लेकिन शहरवाले बहू को मायके में ज्यादा रहने ही कब देते हैं? सोना को मायके आये अभी पन्द्रह दिन भी न हुए थे कि विश्वमोहन सोना को लेने के लिए आ गये। वे जब आ रहे थे, सोना उन्हें रास्ते में ही बिही के पेड़ पर चढ़ी हुई मिली। उसके साथ और भी बहुत से लड़के-लड़कियां थीं। सोना का सिर खुला था। वह बिही तोड़-तोड़कर खा रही थी, और जूठी बिही खींच-खींच कर मारती भी जा रही थी। पेड़ पर बैठी-बैठी हँस रही थी। सोना को विश्वमोहन ने देखा, किन्तु सोना उन्हें न देख सकी। पत्नी की चाल-ढाल विश्वमोहन को न सुहाई। उनकी आंखों में खून उतर आया पर वे चुप-चाप अपने क्रोध को पी गये। किन्तु उसी समय उन्होंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अब वे सोना को मायके कभी न भेजेंगे। वे जाकर चौपाल में मोढ़े पर बैठे ही थे कि अपने बाल-सखा और सहेलियों के साथ सोना भी पहुंची। विश्वमोहन को देखते ही उसने हाथ की बिही फेंक दी और सिर ढककर अन्दर भाग गई। फिर ससुराल जाना पड़ेगा इस भावनामात्र से ही उसका हृदय व्याकुल हो उठा।

सोना फिर ससुराल आई। अब की बार आने के साथ ही

घर का सारा भार सोना को सौंपकर सोना की सास ने घर-गृहस्थी से छुट्टी ले ली। कभी घर का काम करने का अभ्यास न होने के कारण सोना को घर के काम करने में बड़ी दिक्कत होती, इसके लिए उसे रोज़ सास की झिड़कियां सहनी पड़तीं। सोना ने तो खेलना खाना और तितली की तरह उड़ना ही सीखा था। गृहस्थी की गाड़ी में उसे भी कभी जुतना पड़ेगा, यह तो उसने कभी सोचा ही न था। किन्तु यह कठिनता महीने-पन्द्रह दिन की ही थी। अभ्यास हो जाने पर फिर सोना को काम करने में कुछ कठिनाई न पड़ती।

घर में रात-दिन बन्द रहने की उसकी आदत न थी। बाहर जाने के लिए उसका जी सदा व्याकुल रहता। यदि कभी खिलौनेवालों की आवाज़ सुनती या "चना जोर गरम" की आवाज़ उसके कानों में पड़ती तब वह तड़प-सी जाती। अपना यह कैदखाने का जीवन उसे बड़ा कष्टप्रद मालूम पड़ता। किन्तु सोना बहुत दिनों तक अपने को न रोक सकी। वह सास और पति की आंख बचाकर गृह-कार्य के पश्चात् कभी खिड़की, कभी दरवाज़े के पास, जब जैसा मौका मिलता, जाकर खड़ी हो जाती। बाहर का दृश्य, हरे-हरे पेड़ और पत्तियां देखकर उसे कुछ शान्ति मिलती। बाहर की ठंडी हवा का स्पर्श करके उसमें जैसे कुछ जीवन आ जाता। वह जानती थी कि खिड़की दरवाज़े के पास, वह कभी किसी बुरे उद्देश्य से नहीं जाती फिर भी पति नाराज़ होंगे, सास झिड़कियां लगावेंगी, इसलिए वह सदा उनकी नज़र बचाकर ही यह काम करती।

मुहल्लेवालों को यह बात सहन न हुई। कल की आई हुई बहू, बड़े घर की बहू, सदा खिड़की दरवाजों से लगी रहे। अवश्य ही आचरण-भ्रष्ट है। धीरे-धीरे आस-पास के लोगों में सोना के आचरण की चर्चा होने लगी। पुराने विचारवाले, पर्दा के पक्षपातियों को सोना की हरेक हरक़त में बुराई छोड़ भलाई कभी नज़र ही नहीं आती थी। मुहल्ले के बिगड़े-दिल शोहदे, सोना के दरवाज़े पर से दिन में कई बार चक्कर लगाते और आवाज़ कसते। किन्तु न तो सोना का इस तरफ़ ध्यान होता और न उसे इसकी कुछ परवाह थी। वह तो प्रकृति की पुजारिन थी। खिड़की दरवाज़ों के पास वह प्रकृति की शोभा देखती थी; लोगों की बातों की ओर तो उसका ध्यान भी न जाता था।

इसी बीच में, किसी काम से सोना की सास को कुछ दिन के लिए गांव जाना पड़ा। अब पति के आफ़िस जाने के बाद से उसे पूरी स्वतन्त्रता थी। उनके आफ़िस जाने के बाद वह स्वच्छन्द हरिनी की तरह फिरा करती थी। कोई रोक-टोक करनेवाला तो था ही नहीं, अब कभी-कभी वह चिक के बाहर भी चली जाया करती। आस-पास की कई औरतों से जान-पहिचान भी हो गई। वे लोग सोना के घर आने-जाने लगीं। सोना भी कभी-कभी लुक-छिप कर दोपहर के सन्नाटे में उनके घर हो आती। सोना के बारे में; उसके आचरण के विषय में लोग क्या बकते हैं सोना न जानती थी। वह तो सबको अपना हितैषी और मित्र समझती थी। वही लोग, जो सोना से घुल-मिलकर घण्टों बात-चीत किया करते, बाहर जाकर न जाने क्या-क्या बकते।

धीरे-धीरे इसकी चर्चा विश्वमोहन के कानों तक पहुंची। इन सब बातों को रोकने के लिए उन्होंने अपनी मां की उपस्थिति आवश्यक समझी। इसलिए मां को बुलवा भेजा। साथ ही सोना को भी समझा दिया कि वह बहुत सम्भलकर रहा करे। सास के आने पर सोना के ऊपर फिर से पहरा बैठ गया। किन्तु वह तो गांव की लड़की थी, साफ हवा में विचर चुकी थी। उसके लिए सख्त परदे में बिलकुल बन्द होकर रहना बड़ा कठिन था। इसलिए उसका जीवन बड़ा दुःखी था। उससे घर के भीतर बैठा ही न जाता था। जरा मौका पाते ही बाहर साफ हवा में जाने के लिए उसका जी मचल उठता और वह अपने आप को रोक न सकती। विश्वमोहन ने एकान्त में उसे कई बार समझाया कि सोना के इस आचरण से उनकी बहुत बदनामी हो रही है, इसलिए वह खिड़की दरवाजों के पास न जाया करे और बाहर न निकला करे। एक-दो दिन तक तो उनकी बातें याद रहतीं। किन्तु वह फिर भूल जाती और वही हाल फिर हो जाता। जब फिर खिड़की दरवाजों के पास जाती तब बाहर की साफ हवा में जाने के लिए, प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को देखने के लिए उसकी आंखें मचल उठतीं।

एक दिन विश्वमोहन को किसी काम से शहर के बाहर जाना था। सोना ने पति का सामान ठीक कर उन्हें स्टेशन रवाना किया। सास खाना खा चुकने के बाद लेट गई। सोना ने अपने गृहस्थी के काम-धन्धे समाप्त करके कंघी चोटी की, कपड़े बदले, पान बना के खाया, फिर एक पुस्तक लेकर पढ़ने के लिए

खाट पर लेट गई। पुस्तक कई बार की पढ़ी हुई थी, दो-चार पेज उलट-पुलट कर देखा, जी न लगा। उसी समय ठेलेवाले ने आवाज़ दी—दो पैसेवाला दो पैसेवाला, सब चीजें दो-दो पैसे में लो। किताब फेंककर सोना दरवाजे की तरफ़ दौड़ी। ठेलेवाला दूर निकल गया था। दूर तक नजर दौड़ाई पर कहीं भी न देख पड़ा, निराश होकर लौटने ही वाली थी कि पड़ोस ही में रहनेवाला बनिए का लड़का फ़ैजू दौड़ा हुआ आया और बोला—भौजी ! सूई तागा हो तो ज़रा मेरे कुर्ते में बटन टांक दो, मैं कुश्ती देखने जाता हूं।

सोना ने पूछा—कुश्ती देखने जाते हो कि लड़ने ?

फ़ैजू ने मुस्कराकर कहा—दोनों काम करने भौजी ! लेकिन पहिले बटन तो टांक दो, नहीं तो देरी हो जायगी।

सोना सुई तागा लाकर बटन टांकने लगी। फ़ैजू वहीं फ़र्श पर सोना से ज़रा दूर हटकर बैठ गया।

[६]

गाड़ी तीन घण्टे लेट थी। विश्वमोहन ने सोचा यहां बैठे-बैठे क्या करेंगे, चलें जब तक घर में ही बैठकर आराम करेंगे। सामान स्टेशन पर ही छोड़कर, स्टेशन-मास्टर की साइकिल लेकर विश्वमोहन घर पहुंचे। बैठक में फ़ैजू को सोना के पास बैठा देखकर उनके बदन में आग-सी लग गई। वे क्षणभर वहीं खड़े रहे। परन्तु इस दृश्य को वे गवारा न कर सके। अपने गुस्से को चुपचाप पीकर अन्दर आये, माता के पास बैठ गये। सोना से पति की नाराजगी छिपी न रही। ज्यों-त्यों किसी प्रकार

बटन टांककर, कुर्ता फेंज़ को देकर वह अन्दर आई। सोना ने स्वप्न में भी न सोचा था कि यह ज़रा-सी बात यहां तक बढ़ जायगी। पति का चेहरा देखकर वह सहम-सी गई। उनकी त्योरियां चढ़ी हुई, चेहरा स्याह और आंखें कुछ गीली थीं। सोना अन्दर आई। विश्वमोहन ने उसकी तरफ़ आंख उठाकर भी न देखा। उसने डरते-डरते पति से पूछा—कैसे लौट आये?

विश्वमोहन ने रुखाई से दो शब्दों में उत्तर दिया—गाड़ी लेट है।

सोना ने फिर पूछा—अब कब जाओगे?

विश्वमोहन ने एक तीव्र दृष्टि पत्नी पर डाली और कठोर स्वर में बोले—गाड़ी तीन घण्टे बाद जायगी तब चला जाऊंगा।

सोना फिर नम्रता से बोली—तो इस प्रकार बैठे कब तक रहोगे? मैं खाट बिछाये देती हूं आराम से लेट जाओ।

तुम्हें कष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं, मैं बहुत अच्छी तरह हूं, विश्वमोहन ने कठोर स्वर में रुखाई से कहा। सोना के बहुत आग्रह करने पर विश्वमोहन ने कमरे में पैर रखा, न वे मुंह धोये और न खाट ही पर लेटे, कुर्सी पर बैठ गए। एक पुस्तक उठाकर उसके पन्ने उलटने लगे। पढ़ने के नाम से कदाचित् एक अक्षर भी न पढ़ सके हों किन्तु इस तरह से अपनी मनोवेदना को चुपचाप ज़हर की घूंट की तरह

गई। धीरे से उसने अपना सिर विश्वमोहन के पैरों पर धर दिया, बोली—

इस बार मुझे माफ़ करो अब तुम जो कुछ कहोगे मैं वही करूंगी, मुझसे नाराज़ न होओ।

विश्वमोहन के पैरों पर जैसे किसी ने जलती हुई आग धर दी हो, जल्दी से उन्होंने अपने पैर समेट लिये और तिरस्कार के स्वर से बोले—यह बात क्या आज तुम पहली ही बार कह रही हो? यह मौखिक प्रतिज्ञा है। हृदय की नहीं। मैं सब जानता हूं। तुम्हारे कारण तो मैं शहर में सिर उठाने लायक नहीं रहा। जिधर जाओ उधर ही लोग तुम्हारी चर्चा करते हुए देख पड़ते हैं। मेरे तुम्हारे मुंह पर कोई कुछ नहीं कहता तो क्या हुआ, बाद में तो कानाफूसी करते हैं। तुम्हारे ऊपर तो जैसे उसका कुछ असर ही नहीं पड़ता। जो जी में आता है करती हो। भला वह शोहदा तुम्हारे पास बटन टंकवाने क्यों आया? क्या तुम इनकार न कर सकती थी? तुम यदि शह न दो तो कैसे कोई तुम्हारे पास आवे।

सोना ने भय-कातर दृष्टि से पति की ओर देखते हुए कहा—ज़रा सा तो काम था। पड़ोसी-धर्म के नाते, मैंने सोचा कि कर ही देना चाहिए। नहीं तो इनकार क्यों नहीं कर सकती थी?

इसी प्रकार ज़रा-ज़रा सी बातों से बड़ी-बड़ी बातें भी हो जाया करती हैं। निभाया करो पड़ोसी धर्म; मेरी इज़्ज़त का ख्याल मत करना—कहते हुए विश्वमोहन बाहर चले गये। साइकिल उठाई और स्टेशन चल दिये।

आहत-अपमान से सोना तड़प उठी। वह कटे हुए वृक्ष की भांति खाट पर गिर पड़ी और खूब रोई। रोने के बाद उसका जी कुछ हल्का हुआ। उसे अपने गांव का स्वच्छन्द जीवन याद आने लगा। देहाती जीवन की सुखद स्मृतियां एक-एक करके सुकवि की सुन्दर कल्पना की भांति उसके दिमाग़ में आने लगीं। उसे याद आया, किस प्रकार जाड़े के दिनों में अलाव के पास न जाने कितनी रात तक बुड्ढे, जवान, युवतियां और बच्चे सब एक साथ बैठकर आग तापते हुए पहेलियां बुझाते और किस्से-कहानियां कहा करते थे। किसी के साथ किसी प्रकार का बन्धन न था। नदी पर गांव भर की बहू-बेटियां कैसे स्नान करने को जाती थीं और फिर सब एक साथ गाती हुई लौटती थीं; कितना सुखमय जीवन था वह। चने के खेत में नर्म-नर्म चने की भाजी तोड़कर सब एक साथ ही किस प्रकार खाया करते थे और कभी-कभी छीना-झपटी भी हो जाया करती थी। हँसी-मज़ाक भी खूब होता था। किन्तु वहां किसी को कुछ शिकायत नहीं थी। अपने पड़ोसी कुन्दन के लिए वह अपनी मां से लड़भिड़ कर भी मिठाई ले जाया करती थी। नदी पर नहाने के बाद कभी-कभी कुन्दन उसकी धोती भी धो दिया करता था। किन्तु वहां तो कभी इसकी चर्चा भी नहीं हुई। क्रोशिये से एक सुन्दर-सा पोत का बटुआ बनाकर सबके सामने ही तो उसने कुन्दन को दिया था, जो अब तक उसके पास रखा होगा, पर वहां तो इस पर किसी को भी बुरा न लगा था। वहां सब लोगों की सबसे बोलने, बात करने की स्वतन्त्रता

थी। कुन्दन की भाभी नई ही नई तो विवाह के आई थी, पर हम लोगों के साथ ही रोज़ नदी नहाने जाया करती थी और साथ वैठकर भूला भी भूला करती थी, अलाव के पास भी वैठा करती थी। फिर मैंने कौनसा ऐसा पाप कर डाला, जिसके कारण इन्हें शहर में सिर उठाने को जगह नहीं रही। यदि किसी का कुछ काम कर देना, बोलना या बातचीत करना ही पाप है, तो कदाचित् यह पाप जाने-अनजाने मुझसे सदा ही होता रहेगा। मेरे कारण इन्हें पद-पद पर लांछित होना पड़े तो मेरे इस जीवन का मूल्य ही क्या है। ऐसे जीवन से तो मर जाना अच्छा है। मैं घर के अन्दर परदे में नहीं वैठ सकती यही तो मेरा अपराध है न? इसी कारण तो लोग मेरे आचरण तक में धब्बे लगाते हैं? मैं लोगों से अच्छी तरह बोलती हूं; प्रेम का व्यवहार रखती हूं यही तो मुझमें बुराई है न? आज उन्हें मुझ पर क्रोध आया, उन्होंने तिरस्कार के साथ मुझे झिड़क दिया। इसमें उनका कोई कसूर नहीं है। पत्थर के पाट पर भी रस्सी के रोज़-रोज़ घिसने से निशान पड़ ही जाते हैं, फिर वे तो देव-तुल्य पुरुष हैं। उनका हृदय तो कोमल है, इन अपवादों का असर कैसे न पड़ता? रामचन्द्रजी सरीखे महापुरुष ने भी तो ज़रा-सी ही बात पर गर्भवती सीता को वनवास दे दिया था। फिर ये तो साधारण मनुष्य ही हैं। इन्होंने तो जो कुछ कहा ठीक ही कहा। पर इसमें मेरा भी कौन सा दोष है? किन्तु जब इन्हीं के हृदय में सन्देह ने घर कर लिया तो मैं तो जीती हुई भी मरी से गई-बीती हूं। इसी प्रकार अनेक तरह के संकल्प

विकल्प सोना के मस्तिष्क में आये और चले गए।

तीन दिन के बाद विश्वमोहन लौटे। जाने के पहिले उनमें और सोना में जो कुछ बातचीत हुई थी, वे उसे प्रायः भूल-से गये थे। सोना के लिए अच्छी सी साड़ी, एक जोड़ी पैरों के लिए सुन्दर-सी स्लीपर और कुछ हेयर-क्लिप भी लिये हुए वे घर आये, किन्तु सामने चबूतरे पर उन्हें फ़ैजू बैठा मिला। पास की हरी-हरी घास पर वह अपना तीतर चरा रहा था। विश्वमोहन उसे देखते ही तिलमिला-से उठे; सन्देह और भी गहरा हो गया। सारी बातें ज्यों की त्यों ताज़ी हो गईं। उनका हृदय बड़ा ही विचलित और व्यथित हुआ, न जाने कितनी प्रकार की शंकाएं उन्हें व्याकुल करने लगीं। उनका चेहरा फिर गंभीर हो गया। घर आकर वे सोना से एक बात भी न कर सके। मां से एक दो बातें कर, बिना भोजन किये ही वे आफ़िस चले गये। सोना से यह उपेक्षा न सही गई। पिछले तीन दिनों से वह खिड़की दरवाज़े के पास भी न गई थी; और उसने यह निश्चय कर लिया था कि अब वह कभी भी खिड़की-दरवाज़ों के पास न जायगी। किन्तु विश्वमोहन की इस उपेक्षा ने उसके हृदय के घाव को और भी गहरा कर दिया। सोना अब इससे अधिक न सह सकती थी, अपनी जीवन-लीला समाप्त करने का उसे कोई साधन न मिला तब आंगन में लगे हुए धतूरे के पेड़ से उसने दो तीन फल तोड़ लिये और पीसकर पी गई। कुछ ही क्षण बाद सोना के पैर अकड़ने लगे, उसकी ज़बान ऐंठ गई और चेहरा काला पड़ गया। वह देखती थी। किन्तु बोल न सकती थी। इसी समय

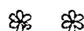
तिवारीजी आ पहुंचे, वे सोना को विदा कराने आये थे। सोना पिता को देखकर बहुत रोई, सारे घर में कुहराम मच गया और देखते ही देखते सोना के प्राण-पखेरू उड़ गए। यह ऐसी नींद थी जिसने सोना को सदा के लिए शांति दे दी तथा अपवादों की विषैली वायु अब उसे छू भी न सकती थी।

शाम को छः बजे विश्वमोहन आफ़िस से घर लौटे। घर में आवाज़ सुनकर किसी अज्ञात आशंका से उनका हृदय विचलित हो उठा। घर में आकर देखा, तिवारीजी कन्या की लाश गोद में लिए डाढ़ें मार-मार कर रो रहे हैं। तिवारीजी इस बीच कई बार कन्या को लेने आ चुके थे किन्तु विश्वमोहन ने विदा न किया था। विश्वमोहन और तिवारीजी में कोई विशेष बातचीत न हुई, अन्तिम संस्कार की तैयारी होने लगी।

अन्तिम संस्कार के बाद जब विश्वमोहन लौटे तो मेज़ पर उन्हें सोना का पत्र मिला—

मेरे देवता! मैं मर रही हूं। किन्तु साथ ही विश्वास दिलाती हूं कि मैं निर्दोष हूं, मुझे ऐसा लगता है कि या तो यह दुनिया मेरे लायक़ नहीं है या मैं ही इस दुनिया के योग्य नहीं हूं। इस छल-कपट से परिपूर्ण संसार में मुझे भेज कर शायद विधाता ने भूल की थी। मुझे अपने मरने का अफ़सोस नहीं। कोई दुःख है तो केवल इस बात का कि मैं आपको कभी सुखी न कर सकी।

—अभागिनी सोना





श्री नाथूराम प्रेमी

आप दिगम्बर जैन हैं। मुम्बई में व्यवसाय करते हैं। प्रसिद्ध हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय के संस्थापक आप ही हैं। हिंदी के सिद्धहस्त लेखक हैं।

'विचित्र स्वयंवर' और 'कुणाल' दोनों कहानियों का आपने बँगला से अनुवाद किया है। हिंदी-जैन-साहित्य की भी आपने स्तुत्य सेवा की है। हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय में आपने आज तक जितनी भी हिंदी-पुस्तकें प्रकाशित की हैं, वे सब की सब साहित्य की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। मुम्बई में आप सब से पुराने हिंदी-पुस्तक-प्रकाशक हैं।

आप कितने ही वर्ष तक 'जैन-हितैषी' हिंदी-समाचारपत्र का भी संपादन करते रहे हैं। किंतु स्वास्थ्य गिर जाने के कारण आपको इसे पीछे बंद ही करना पड़ा। आपकी उपर्युक्त सेवाओं के उपलक्ष्य में हिन्दी-सेवियों ने एक बृहदाकार अभिनंदन-ग्रंथ प्रकाशित किया है।

राज्य में आवे-जावे ही नहीं। नहीं, जिसको आना जाना हो खुशी से आवे और वहां रहे; परंतु कोई विवाह की चर्चा न करे। बस, अंग-राज्य में सब से अधिक भयंकर बात उसके विवाह की चर्चा ही थी।

राजा सत्यसेन भी मंद्रा से डरता था। देश के दूसरे राजा और सारी प्रजा भी उससे भयभीत रहते थे। ऐसी दशा में उसके विवाह की चर्चा कौन उठावे? मंद्रा कुमारी रह गई—उसका विवाह न हुआ।

मंद्रा की माता मर चुकी थी। माता की मृत्यु के बाद पिता के राज्य का सारा भार उसने उठा लिया था। इस तरह वह अपूर्व लड़की उस समय राजकार्य का भार, यौवन का भार, सुख-दुःख की स्मृति का भार, ज्ञान का भार और धर्म का भार लेकर अपने जीवन के पथ में अकेली चल रही थी।

राजसभा के विशाल भवन में आज बहुत से मंत्री, बड़े बड़े राजकर्मचारी और मित्रराज्यों के कई राजकुमार उपस्थित हैं। मंद्रा महाराज के सिंहासन के पीछे बैठी हुई है। एक ओर कर्ण-सुवर्ण के राजपुत्र कुमार नायकसिंह ऊंची गर्दन किये हुए उस अद्भुत और अपूर्व बालिका के रूप को देख रहे हैं। नायकसिंह सुन्दर, सुसज्जित और सुवीर हैं। वे मंद्रा के पाणि-ग्रहण की इच्छा से चम्पा नगरी में आए हैं।

एक सप्ताह के बाद अमावस्या है। इसलिए कालीपूजन और निमंत्रण आदि के विषय में विचार हो रहा है। सब की ही यह राय हुई कि पूर्व पद्धति के अनुसार अंग-देश में काली-

पूजा अवश्य की जाय।

राजा सत्यसेन बोले—कुमारी मंद्रा से भी पूछ लेना चाहिए!

मंद्रा निष्कंप और स्थिर दृष्टि से धरती की ओर देख रही थी और किसी गहरी चिंता में डूब रही थी। धीरे-धीरे सब की आंखें झपने लगीं। राजा को, मंत्रियों को और प्रजा के लोगों को—सब को तंद्रा आने लगी।

मंद्रा के निद्रारहित नेत्रों को भी तंद्रा ने घेर लिया! बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी आंखें झपने लगीं।

उसी समय उस विशाल सभा-भवन के द्वार पर एक भिक्षुक आकर खड़ा हो गया।

२

भिक्षुक का न तो सिर मुँडा था और न उसके हाथ में कमण्डलु ही था। एक सफ़ेद चादर से उसका सारा शरीर ढका हुआ था। इसलिए यह न मालूम होता था कि वह बालक है या युवा, मोटा ताज़ा है या दुर्बल।

उसकी दृष्टि वैराग्यपूर्ण थी और आकर रहस्यमय था। उसके सिर के बाल कुछ कुछ जटाओं का रूप धारण कर रहे थे। उसके मोतियों के समान दांतों के बीच में तुषार जैसी हँसी की रेखा झलकती थी और प्रशस्त ललाट में चिंता की कुछ कुछ सिकुड़न पड़ रही थी। उसका रंग उज्ज्वल था और शरीर प्रकाशवान्।

भिक्षु ने धीरे धीरे भीतर पहुंचकर कहा—सब का

कल्याण हो।

शब्द के होते ही उस विशाल भवन के हज़ारों तंद्रापूर्ण नेत्र उसके ऊपर जा पड़े।

निद्रा में एकाएक बाधा पड़ जाने से राजा सत्यसेन को बड़ा क्रोध आया। वे बोले—यह आदमी चोर है।

भिक्षु ने दोनों हाथ उठाकर कहा—आपका कल्याण हो।

तब मंद्रा ने पिता के कान में कुछ कहकर, सर्पिणी के समान क्रुद्ध होकर पूछा—तुम किस राज्य के प्रजाजन हो?

भिक्षु—विश्व-राज्य के।

मंद्रा—मालूम होता है तुम कोई स्वांगधारी डाकू हो।

भिक्षु—कल्याण हो।

मंद्रा—कल्याण कौन करेगा?

भिक्षु—जीव अपना कल्याण आप ही करता है।

मंद्रा—मैं तुम्हारा परामर्श रूप ऋण नहीं लेना चाहती।

भिक्षु—मैं ऋण नहीं देता, दान करता हूं। मैं देखता हूं कि इस विशाल राज्य में शक्ति-पूजा की तैयारी हो रही है; जो बहुत ही घृणित और हत्याकारी कर्म है। यह सृष्टि की बाल्यावस्था की अज्ञानजन्य क्रिया के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आप ज्ञान-लाभ करके इसे छोड़ दें।

प्रधान मंत्री बोला—यह कोई बौद्ध भिक्षु है। सेनापति रुद्रनारायण ने कहा—इसको बांधकर शूली पर चढ़ा देना चाहिए।

मंद्रा क्रोध से जल उठी। उसने कठोर शब्दों में कहा—

काली-पूजा अवश्य होगी और उसमें सैंकड़ों हज़ारों जीवों को बलि दिया जायगा। क्या इससे तुम्हारी कुछ हानि है ? और क्या तुम जैसे क्षुद्र पुरुषों में उसके रोकने की शक्ति है ?

राजा बहुत ही प्रसन्न होकर हँसने लगे। लोगों ने सोचा था कि मंद्रा काली-पूजा का विरोध करेगी; परंतु उन्होंने देखा कि एकाएक इस रुकावट के आ जाने से उसका विचार बदल गया है। मंद्रा का स्वभाव ही ऐसा था।

भिक्षु बड़े अभिमान के साथ ऊंचा मस्तक करके मंद्रा के प्रज्वलित नेत्रों की ओर स्थिर भाव से देखने लगा और बोला—राजकुमारी मंद्रा ! इस समय मैं तुम्हें ही काली समझता हूं। कहो, तुम कितने हज़ार बलिदानों से तृप्त होओगी ?

मंद्रा—तू देवद्वेषी और दुराचारी है, इसलिए मैं पहले तेरी ही बलि लूंगी।

भिक्षु—यदि इस क्षुद्र जीव के बलिदान से तुम्हारे और तुम्हारी प्रजा के हृदय में करुणा का संचार हो, तो मैं तैयार हूं। यह ठीक है कि दुर्दमनीय प्रकृति की संहारशक्ति को रोकने का बल मुझ में नहीं है; तो भी यदि प्रकृति चाहे, तो वह स्वयं उसे रोककर संसार को आनंदमय बना सकती है। इसलिए मैं उसे उत्तेजित या उद्दीपित करने के लिए तत्पर हूं।

मंद्रा—किस उपाय से ?

भिक्षु—केवल निमित्त बनकर, अर्थात् सेवा करके, ज्ञान का प्रचार करके, और संयम की शिक्षा देकर। कुमार ! यह विशाल राज्य पतनोन्मुख हो रहा है। जब राजा के हृदय में दया नहीं

है, और वह किसी को आत्म-त्याग करना नहीं सिखलाता, तब तुम निश्चय समझो कि एक राजा मिटकर हजारों राजा हो जाएंगे और देश में राष्ट्रविप्लव हो जाएगा। जब धर्म की जलती हुई आग राजसिंहासन से भ्रष्ट होकर अन्य आधार ग्रहण करती है और उस महान् विप्लव के समय करुणा, स्नेह, पवित्रता, साम्य, शांति और प्रीति आदि सद्गुण नहीं होते, तब उसमें सब ही भस्म हो जाते हैं। इस बड़े भारी राज्य में पाप का प्रवेश हो गया है। यहां मद्यमांस का श्राद्ध और सतीत्व धर्म का सत्यानाश किया जाता है। यहां निःसहाय और मूक प्राणियों को बलि चढ़ाकर पाप को उकसाया जाता है। कुमारी मंद्रा, कालीपूजा की फिर से प्रतिष्ठा करके ये सब लोग बिना समझे-बूझे घोर तामसी वृत्ति को अपनी ओर खींचने का उद्योग कर रहे हैं। तुम्हें चाहिए कि इस जीव-बलि की जगह आत्मबलि की शिक्षा देकर पूजा प्रतिष्ठा करो। यह आत्मबलि ही सच्ची कालीपूजा है। यह बौद्ध भिक्षु भी तुम्हारी इस पूजा का प्रसाद लेकर आत्मतुष्टि करेगा।

उक्त व्याख्यान सुनते सुनते बहुत-से लोग फिर ऊंघने लगे। राजा साहब का उनमें पहला नम्बर था। मंद्रा ने कहा—यह आदमी पागल है, इसको देवदत्त पुजारी के घर में क़ैद करके रक्खो।

३

बूढ़ा देवदत्त पुजारी घोर शाक्त था। उसका एक वामनदास नाम का पुत्र था, जिसकी उमर लगभग १५ वर्ष की थी। वह एक

बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर वेद-पाठ करता था। उसकी बूढ़ी माता हरिनाम की माला जपा करती थी। पुजारी के घर में इन तीन जनों के अतिरिक्त सत्यवती नाम की एक लड़की और थी।

सत्यवती देवदत्त की कन्या है; परन्तु कैसी कन्या है, यह किसी को मालूम नहीं। कई लोगों का कथन है कि वह किसी क्षत्रिय की कन्या है। जब वह छोटी-सी थी, तब देवदत्त उसे मिथिला से ले आया था। कोई कोई कहते हैं कि एक बार देवदत्त माघी पूर्णिमा के मेले में गया था और वहां इसे गंगा नदी के तट पर अकेली पड़ी देखकर उठा लाया था। सत्यवती की अवस्था इस समय सत्रह वर्ष की है।

सत्यवती बहुत ही सुंदर है। उसका मुख-कमल सदा ही प्रफुल्लित रहता है। घर के काम-काज में वह बड़ी चतुर है। सेवा-शुश्रूषा करना ही उसका व्रत है। इसी व्रत में उसका जीवन और यौवन वर्द्धित और पालित हुआ है।

सेनापति रुद्रनारायणसिंह हाथ में नंगी तलवार लिये हुए देवदत्त के घर पहुंचा। क़ैदी भिक्षु उसके साथ था।

देवदत्त उसे देखकर बाहर आंगन में आ खड़ा हुआ।

सेनापति—राजकुमारी मंद्रा ने आज्ञा दी है कि यह बौद्ध भिक्षु आपके यहां सात दिन तक क़ैद रहे।

देवदत्त—इसके लिए कोई पहरेदार भी रक्खा जायगा?

सेनापति—न।

देवदत्त—तब तो बड़ी कठिनाई होगी! यदि कहीं भाग गया तो?

सेनापति—यदि भाग गया तो इसके साथ आपका यह जटाधारी मस्तक भी चला जायगा । इसलिए इसे किसी तरह अपने तन्त्र-मन्त्र-बल से बांधकर रखिएगा ।

सेनापति चला गया । देवदत्त ने भिक्षु की ओर देखा । उस देवतुल्य सुंदर युवा की मूर्ति देखकर उसे विश्वास हो गया कि भिक्षु भाग जाने वाला व्यक्ति नहीं है । इसके बाद उसने कुछ सोचकर पुकारा—सती !

सत्यवती झरोखे में से देख रही थी । शीघ्र ही बाहर होकर नीचा सिर किये हुए बोली—कहिए, क्या आज्ञा है ?

देवदत्त—यह बौद्ध भिक्षु राजकुमारी की आज्ञा से सात दिन के लिए अपने यहां क़ैद रक्खा गया है । इसकी देख-रेख का भार तुम्हें सौंपा जाता है ।

सत्यवती ने हँसकर कहा—अच्छा, किंतु यदि यह भाग गया तो ?

देवदत्त—यह वामनदास के बराबर न दौड़ सकेगा । उसको ज़रा मेरे पास बुला लाओ ।

पिता की आज्ञा से वामनदास ने रात को पहरा देना स्वीकार किया । दिन की देख-रेख का भार सत्यवती पर रहा ।

भाई-बहन को भिक्षु की देख-रेख का भार सौंपकर देवदत्त मंत्र जपने के लिए फिर घर में चला गया और वामनदास अपने वेद-पाठ में लग गया । सत्यवती साहस करके भिक्षु के सामने खड़ी हो गई और बोली—तुम्हें मैं क्या कहकर पुकारा करूं ?

भिक्षु—कुमारी ! मैं तुम्हारी हथेली देखना चाहता हूं ।

सत्यव्रती ने आदरपूर्वक अपनी हथेली आगे कर दी। भिक्षु उसे अच्छी तरह देखकर विस्मयसागर में डूब गया। ऐसा मालूम होता था कि उसे कोई पुरानी बात, या कोई पुराना टूटा हुआ वंधन, अथवा कोई छिपी हुई स्मृति याद आ गई है। उसने बहुत ही दुःख पूर्ण स्वर से कहा—अमिताभ !

सत्यवती—तुमने यह क्या संबोधन किया ?

भिक्षु—तुम मुझे 'शरणभैया' कहकर पुकारा करो।

सत्यवती ने चौंककर पूछा—क्या तुम मेरे शरणभैया को जानते हो ?

भिक्षु—यदि जानता होऊं, तो क्या आश्चर्य है ?

सत्यवती—मैं उन्हें स्वप्न में देखा करती हूं। गंगा नदी के उत्तर में हिमालय से सटा हुआ एक अरण्य है। सीता का जन्म वहीं हुआ था। बहुत ही सुहावना वन है। वहां सोने के पक्षी जहां-तहां वृक्षों पर उड़ा करते हैं और ऋषियों के समान सरल स्वभाव के मनुष्य वहां निवास करते हैं। उसी वन में मेरे शरणभैया रहते हैं।

भिक्षु—नहीं, मैं उस वन में नहीं रहता। वह वन तो इस समय व्याघ्र और रीछों से भरा हुआ है। मैं एक बौद्ध भिक्षु हूं। देश-देश में धर्म-प्रचार करता हुआ घूमा करता हूं।

सत्यवती—पर यह बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हारा और उनका नाम एक-सा मिल गया। मेरे शरणभैया, भिक्षु नहीं-राजपुत्र हैं।

भिक्षु—स्वप्न के राजपुत्र की अपेक्षा जाग्रतावस्था का भिक्षु अच्छा है। क्योंकि तुम्हारा यह भाई सत्य है और वह स्वप्न का

भाई मिथ्या है। सती बहन ! तुम स्वप्न को छोड़कर सत्य का अवलंबन करो।

सत्यवती मंत्रमुग्ध-सी हो गई। उसने स्नेहपूर्ण स्वर से कहा—अच्छा।

४

राज्य के कोषाध्यक्ष लाला किशनप्रसाद ने मन-ही-मन सोचा कि राजकुमारी मंद्रा की इस अद्भुत आज्ञा का कोई न कोई गूढ़ आशय अवश्य है। एक युवा पुरुष को सत्यवती के समान सुंदर युवती के घर क़ैद करने की कूटनीती को लाला साहब तत्काल ही भाँप गए। लाला साहब जाति के क्षत्रिय हैं। ३० वर्ष के लगभग होने पर भी आपका अभी तक विवाह नहीं हुआ। आप शक्ति की पूजा करते हैं। रंग आपका काला है, किंतु आप समझते हैं कि काला होने पर भी मैं सुंदर हूं। शरीर की सजावट पर और कपड़ों-लत्तों की बनावट पर आपका ध्यान बहुत रहता है। गुपचुप हँसना, चोरी करके सीनाज़ोरी करना, बातों में ज़मीन और आसमान के कुलावे मिला देना आदि आपके स्वभाव-सिद्ध गुण हैं। राज्य में आप एक पराक्रमी वीर समझे जाते हैं और धन-दौलत भी सब आपके हाथ रहती है। इसलिए लोग आपको सेनापति और मंत्री की अपेक्षा भी अधिक मानते हैं। आप राजकुमारी मंद्रा के अतिरिक्त और किसी से नहीं डरते, क्योंकि आपकी शक्ति, बुद्धि, चालाकी आदि सब ही उसके सामने व्यर्थ हो जाती हैं।

लाला किशनप्रसाद देवदत्त के पड़ोस ही में रहते हैं। सत्यवती का अपूर्व रूप और विमल-चरित्र देखकर आपका मन

आपके वश में नहीं रहा है। किंतु जिसके कुल और शील का कुछ पता नहीं, ऐसी युवती के साथ विवाह करना मेरी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है, यह सोचकर आपने अंत में यह निश्चय किया है कि किसी तरह सत्यवती को हरण करके उसके साथ गान्धर्व-विवाह किया जाय।

लाला साहब ने बड़ी कठिनता से सत्यवती के हृदय में एक शरत्काल के बादल के टुकड़े की सृष्टि कर पाई है। सत्यवती सोचती होगी कि किशनप्रसाद मुझे चाहते हैं। जब आपने उसका यह अभिप्राय समझने का यत्न किया, तब आपके चित्त पर आशा की एक रेखा खिंच गई। थोड़े दिनों में यही रेखा एक प्रकार के आंदोलन से सारे हृदय में व्याप्त हो गई और अंत में वह इतनी प्रबल हो उठी कि कुछ दिन पहले जब आपने एक बार सत्यवती को अकेली पाया, तब आप अपने निस्वार्थ और हताश प्रेम का परिचय देकर रोने तक लगे और बोले—यदि मेरा तुम्हारे साथ विवाह न होगा, तो मैं इस संसार को छोड़कर किसी अज्ञात तीर्थ पर जाकर मर जाऊंगा और मर के भूत बन जाऊंगा। इस भूत की भीति और करुणा से अभिभूत होकर उस दिन सत्यवती ने कह दिया—अच्छा, आप यह बात पिता जी से कहना।

लाला साहब अपने मनोरथ के सिद्ध होने की आशा से आजकल खूब बन-ठनकर रहते हैं; किंतु इसी बीच यह बखेड़ा हो गया। उन्होंने देखा कि बखेड़े के सम्मुख बौद्ध भिक्षु और पीछे राजकुमारी मंद्रा खड़ी है।

चतुर किशनप्रसाद ने जहां-तहां यह गप्प उड़ा दी कि बौद्ध भिक्षु बड़ा भारी योगी है, उसके योगबल की प्रशंसा नहीं हो

सकती। बस, फिर क्या था, झुंड-के-झुंड स्त्री-पुरुष देवदत्त के घर आने-जाने लगे। इसके सिवा लाला साहब कभी-कभी मौका पाकर सुंदरी कुमारियों को संन्यासिनियों के वेश में और रूपवती वेश्याओं को गृहस्थों की कन्याओं के वेश में भी वहां भेजने लगे, जिससे कि किसी तरह भिक्षु पथ-भ्रष्ट हो जाय किंतु वे सब ही वहां से विफलमनोरथ लौटने लगीं। उस बौद्ध भिक्षु के अजेय हृदय-दुर्ग का एक अणु भी विचलित न हुआ। लाला जी की झूठी गप्प सच हो गई। उसका असीम करुणामय मुख देखकर और उसकी स्नेहमयी वाणी सुनकर सैकड़ों स्त्री-पुरुष बौद्धधर्म ग्रहण करने लगे।

यह बात धीरे-धीरे राजकुमारी के कानों तक जा पहुंची। कृष्ण त्रयोदशी की संध्या को उसने सेनापति को आज्ञा दी कि किशनप्रसाद को इसी समय मेरे सामने लाया जाय।

५

तत्काल ही किशनप्रसाद उपस्थित किया गया। सेनापति को वहां से चले जाने का इशारा करके राजकुमारी मंद्रा ने गरजकर कहा—किशनप्रसाद, सच-सच कहो, तुम्हारा क्या अभिप्राय है? किशनप्रसाद ने हाथ जोड़कर कहा—राजकुमारी, धर्म के नाते आप सब की माता हैं और मैं आपकी संतान हूं। इसलिए मैं आपसे कुछ छिपाना नहीं चाहता। सत्यवती पर मेरा अनुराग है—मैं उसे हृदय से चाहता हूं; परंतु मालूम होता है कि आपने इस बात को न जानकर इस दरिद्र के रत्न को किसी गूढ़ उद्देश्य से दूसरे के हाथ देने का संकल्प कर लिया है।

मंद्रा—पापी, तू चरित्रहीन नम्कर है। तेरे मुंह से अनुराग

और प्रेम की बात शोभा नहीं देती।

किशनप्रसाद—(विनीत भाव से) मैंने धीरे-धीरे अपना चरित्र सुधार लिया है। अब मैं सत्यवती को ब्याह कर किसी अन्य राज्य में जाकर रहने लगूंगा।

मंद्रा—वाह, कैसा निस्वार्थ भाव है! अरे कृतघ्न, तू राज्य-वंश के अन्न से पलकर अब क्या विद्रोही बनना चाहता है?

किशन०—विद्रोही? मैंने ऐसा कौन-सा काम किया है?

मंद्रा—तू भिक्षु को ललचाकर भ्रष्ट करना चाहता है और इसके लिए भरसक निन्द्य काम कर रहा है। परिणाम इसका यह है कि देश में बौद्धधर्म का प्रचार बढ़ता जा रहा है।

किशन०—मेरे ललचाने का इसके सिवा और कोई उद्देश्य नहीं कि भिक्षु का मन सत्यवती से हटकर किसी दूसरी ओर लग जाय। और आपने जो बौद्धधर्म के प्रचार की बात कही है, सो भिक्षु को यहां से निकाल देने पर ही बस हो जायगी। उसके जाते ही बौद्धधर्म की जड़ उखड़ जायगी। राजकुमारी! अब भी समय है कुछ उपाय कर दीजिये, नहीं तो भिक्षु सत्यवती को लेकर भाग जायगा।

मंद्रा—तू झूठ बकता है।

किशन०—नहीं, मैं सच कहता हूं।

मंद्रा की आवाज़ लड़खड़ा गई। इसके पहले अंगराज्य की राजकुमारी की कठोर आवाज़ को किसी ने भी लड़खड़ाते न सुना था।

मंद्रा—किशनप्रसाद, क्या यह बात सच है?

किशन०—बिलकुल सच है। सत्यवती भिक्षु को अपना हृदय सौंप रही है।

मंद्रा—और भिक्षु ?

किशन०—वह तो कभी का सौंप चुका है।

जिस तरह हवा के तेज़ झोंके से वृक्षों में से सनसन करती हुई आवाज़ निकलने लगती है, उसी तरह की दुःखभरी आवाज़ से मंद्रा ने कहा—क्या सौंप चुका है ?

किशन०—हृदय।

मंद्रा—पापी, तू क्या जानता है कि हृदय किस तरह सौंपा जाता है ?

किशनप्रसाद ने मन-ही-मन कहा—हां, खूब जानता हूं। अब केवल उपाय निकलने की देरी है फिर तो काम सिद्ध ही हुआ समझो। इसके बाद उसने प्रकाशरूप से कहा—राजकुमारी, आप मेरी बात पर तब विश्वास करेंगी, जब आप आज या कल सुनेंगी कि भिक्षु सती को लेकर भाग गया। कहिए, अब इस सेवक के लिए क्या आज्ञा है ?

मंद्रा—तुम उसे रोकना और दोनों को बांधकर ले आना। ज़रूरत हो तो सेनापति की भी सहायता ले लेनी; अंगराज्य से एक कुमारी को लेकर—

किशन०—भागना—

मंद्रा—बड़ा भारी अपराध है। उसको कठिन दंड देना चाहिए।

किशनप्रसाद चला गया।

आधी रात का समय है। भिक्षु देवदत्त के घर ध्यान में मग्न हो रहा है। इतने में सत्यवती ने धीरे से आकर किवाड़ खोले और दुःखभरे कंठ से कहा—शरण भैया !

भिक्षु ने आंखें खोलकर कहा—क्यों सती ?

सत्यवती—शरण भैया, मैं तुमसे एक बात न कह पाई थी। आज किशनप्रसाद मुझे तुम्हारे पास से छीन ले जायगा।

भिक्षु—(विस्मित होकर) इसका क्या मतलब ? यह तो मैं जान गया हूं कि किशनप्रसाद दुराचारी पुरुष है, परंतु उसे तुम्हें छीन ले जाने का क्या अधिकार है ?

सत्यवती—किशनप्रसाद मेरे साथ विवाह करना चाहता था। परंतु उसकी यह इच्छा पूरी न हुई, इसलिए आज रात को वह मुझे बल-पूर्वक ले जायगा। इस संकट से बचने का इसके अतिरक्त और कोई उपाय नहीं कि इस देश को ही छोड़ दिया जाय। भैया, इस देश में धर्म नहीं है। मैं तो अब संन्यासिनी हो जाऊंगी और बुद्ध भगवान् की शरण लेकर घर-घर भीख मांगकर अपना जीवन व्यतीत करूंगी।

भिक्षु ने उस कोठरी के टिमटिमाते हुए दीपक की ओर देखकर एक लम्बी सांस ली और कहा—"अच्छा, भगवान् की इच्छा पूर्ण हो। संन्यासिनी बहन ! लो, अब तुम तैयार हो जाओ। यह तो तुम्हें मालूम है कि जंगल बड़ा दुर्गम है। क्या तुम मेरे साथ दौड़ सकोगी ?

सत्यवती के हृदय में एक अलक्षित शक्ति का संचार हो गया, उसने आनंद और उत्साह से कहा—जंगल क्या चीज़ है,

में नदी और पर्वतों को भी सहज ही पार कर जाऊंगी।

सारा नगर घोर निद्रा में मग्न था। चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। रास्तों पर एक भी मनुष्य नहीं दिखाई देता था। भिक्षु सत्यवती के साथ देवदत्त के घर से चल दिया।

६

रात ढल चुकी थी। राजकुमारी मंद्रा चंपागढ़ के सिंहद्वार को पार करके ठहर गई। वह एक शीघ्रगामी घोड़े पर सवार थी और हाथ में धनुर्बाण लिये थी। उसने कुमार नायकसिंह को पुकारकर कहा—कुमार, आप अंगराज्य के पुराने मित्र हैं। इस समय आपको मेरी एक बात माननी होगी।

कुमार नायकसिंह ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए तैयार हूं।

मंद्रा—राजधानी से बाहर जाने के केवल दो ही रास्ते हैं। अभी थोड़ी ही देर पहले बौद्ध भिक्षु कुमारी सत्यवती को लेकर भागा है। यह तो नहीं मालूम कि वह किस रास्ते गया है, परन्तु गया है इन्हीं दो रास्तों में से किसी एक से। अभी घड़ी-भर पहले ही किशनप्रसाद ने मुझे इस बात की सूचना दी है। अतएव राजधर्म के अनुसार उन दोनों को रोकना हमारा कर्त्तव्य है। एक रास्ते से तो मैंने किशनप्रसाद खजांची और रुद्रनारायण सेनापति को चार होशियार सैनिकों के साथ भेज दिया है। अब एक रास्ता और है। आपकी शूरवीरता की मैंने बहुत प्रशंसा सुनी है। इसलिए मैं चाहती हूं कि इस दूसरे रास्ते से आप ही जावें और भिक्षु तथा सत्यवती को कैद कर लावें। आप घोड़े पर सवार होकर अकेले

ही जाइए। जरूरत होगी तो मैं भी आपकी सहायता करूंगी।

कुमार नायकसिंह ने एड़ी लगाकर अपना घोड़ा छोड़ दिया। मंद्रा को घबराई हुई और चिन्तित-सी देखकर नायकसिंह के मन में बार-बार यह प्रश्न उठने लगा कि बौद्ध भिन्तु के मार्ग में मंद्रा का क्या काम ?

काली रात है। नैश वायु दूरवर्ती पर्वतमाला से टकराकर अरण्य को व्याप्त कर रही है। तारे छिटक रहे हैं। पूर्व की ओर के आकाश में बादलों के कई सफ़ेद-सफ़ेद टुकड़े इधर-उधर बिखर रहे हैं।

लगभग एक कोस चलकर सत्यव्रती ने कहा—शरण भैया, मालूम होता है कि पीछे से हमें पकड़ने के लिए घुड़सवार आ आ रहे हैं।

भिन्तु ने हँसकर कहा—सत्यव्रती, मैं अपने जीवन में ऐसे बहुत से घुड़सवार देख चुका हूं। उनका मुझे ज़रा भी भय नहीं, भय है तो केवल तुम्हारी रक्षा का। इस समय बस-एक ही उपाय है। देखो, इस ऊंचे पर्वत की बाईं ओर से एक दूसरा रास्ता गया है, तुम उसी रास्ते से भागो। मैं इन सब को हटाकर तुम्हारे पास आता हूं।

सत्यव्रती भय के मारे कुछ न कह सकी और बतलाये हुए रास्ते से भागी। थोड़ी ही देर में चार सवारों ने और सेनापति रुद्रनारायण ने आकर भिन्तु को घेर लिया। केवल किशनप्रसाद घोड़े पर चढ़े हुए खड़े रहे।

पांचों सवार तलवारें सूँतकर भिन्तु को पकड़ने की चेष्टा

करने लगे।

इसी समय किशनप्रसाद ने चिल्लाकर कहा—और सत्यवती कहां है? वह अवश्य ही किसी दूसरे रास्ते से भाग गई है।

किशनप्रसाद को उसी रास्ते से जाते देख भिक्षु ने गरजकर कहा—सावधान, पापी! खड़ा रह। अपने हाथ से अपनी मौत मत बुला।

उसी समय, बात की बात में भिक्षु ने लपककर एक योद्धा के हाथ से तलवार छीन ली और वह रणस्थल में अड़ गया। अपने विलक्षण हस्तकौशल तथा असीम पराक्रम से उसने चारों योद्धाओं को बात की बात में परास्त और निरस्त कर दिया। धराशायी योद्धाओं में से रुद्रनारायणसिंह भिक्षु के सामने बहुत देर तक टिका रहा। अंत में उसने कहा—भिक्षु, तुम्हारा वीरत्व और युद्धकौशल अपूर्व है। बौद्ध-धर्म छोड़कर यदि तुम क्षत्रिय-धर्म ग्रहण करते, तो अवश्य ही किसी विशाल राज्य के सिंहासन को सुशोभित करते।

इसके उत्तर में भिक्षु ने कहा—वीर, मैं इस समय तो धर्म की रक्षा के लिए अवश्य ही क्षत्रिय हूं, परंतु कल फिर गली-गली में भटकने वाला भिखारी हो जाऊंगा। इस समय डाकुओं के हाथ से इस भिखारी को अपने एकमात्र धन—

इसी समय अंधकार में से किसी स्त्री के कण्ठ का शब्द सुन पड़ा। भिक्षु ने देखा कि थोड़ी ही दूर पर राजकुमारी मंद्रा धनुर्बाण लिए खड़ी है।

मंद्रा ने कठोर स्वर में कहा भिक्षु! अपने धनरत्न के

उद्धार करने के पहले तू मेरे इस वाण से अपना उद्धार करने की चेष्टा कर।

मंद्रा का निशाना अचूक था। उसका तीक्ष्ण वाण भिक्षु के बाएं पैर की तली को पार कर गया।

उस समय आकाश घने मेघों से आच्छादित हो रहा था। ठंडी हवा प्रबल वेग से बह रही थी। धीरे-धीरे अंधकार और निविड होने लगा। मंद्रा भिक्षु को न देख सकी। वह एक बार केवल यही सुन सकी कि, 'सत्यवती, तुम निर्दोष हो। तुम्हारा कल्याण हो। भिक्षु का यह स्वर बड़ा ही करुण और निर्वेदपूर्ण था।

इसी समय बिजली की कड़क से वन-पर्वत कांप उठे।

मंद्रा ने अपने धनुर्बाण को फेंक दिया। वह उस गहरे अंधकार में पगली के समान पुकारने लगी—तुम कहां हो! भिक्षु, तुम कहां हो? किंतु भिक्षु का कहीं पता न था। झंझावायु से क्षुब्ध हुए उस अरण्य में केवल यही प्रतिध्वनि सुन पड़ती थी कि 'भिक्षु, तुम कहां हो?'

७

कुमार नायकसिंह आकाश की अवस्था देखकर घोड़े से उतर पड़े और एक बड़े पत्थर के सहारे खड़े हो गये। इस समय उनका चित्त उदास था। इतने में बिजली फिर चमकी। उन्होंने देखा कि सत्यवती उनके पास ही से भागी जा रही है। वे उसे रोककर बोले—सुंदरी, मैंने एक वीरवंश में जन्म लिया है। अपने जीवन में मुझे बुरे और भले दिन, रणभूमि और रंग-

भूमि सब ही कुछ देखने का अवसर मिला है। इसलिए कहता हूं कि इस अंधेरी रात में यह कंटकमय और पथरीला रास्ता तुम जैसी अबलाओं के लिए घर का आंगन नहीं है। तुम भागने का प्रयत्न मत करो।

कुमार नायकसिंह को अंगदेश में प्रायः सब ही जानते थे। सत्यवती भी उन्हें पहचान गई, इसलिए खड़ी हो गई और आंखों में आंसू भर हाथ जोड़कर बोली—कुमार, मैं अनाथ हूं। मुझे तुम भले ही क़ैद कर लो, परंतु भिक्षु 'शरण भैया' को छोड़ दो।

कुमार—उन्हें छोड़ देने का अधिकार तो मंत्री को है। हां, मैं तुम्हें अवश्य छोड़ सकता हूं। छोड़ देने में कुछ दोष भी नहीं है, क्योंकि तुम भागना नहीं जानतीं।

पीछे से किसी ने कहा—नहीं, कभी न छोड़ना। यह रमणी मेरी प्रणयिनी है।

लाला किशनप्रसाद ने युद्धस्थल में अपनी बहादुरी की सीमा दिखलाने के लिए थोड़ी-सी शराब पी ली थी। आप कुछ पास जाकर बोले—सत्यवती, तुम्हारा दास तुम्हारे सामने खड़ा है।

सत्यवती ने कातर स्वर से कहा—कुमार, मुझे बचाओ।

तुम्हें बचाने की शक्ति किसी में नहीं है! कहकर लाला साहब ने सत्यवती का हाथ पकड़ लिया।

कुमार नायकसिंह ने सोचा—इस समय इस पिशाच की लात-घूंसों से पूजा करना ही विशेष फलप्रद होगा, और बिना कुछ कहे-सुने उन्होंने ऐसा ही किया।

सत्यवती को छुड़ाकर कुमार ने लाला साहब की खूब पूजा की और उन्हें एक झाड़ से उन्हीं के दुपट्टे द्वारा कसकर बांध दिया।

मंद्रा वृक्ष की ओट में खड़ी हुई ये सब बातें देख रही थी; इतने में थोड़ी ही दूर से किसी की आवाज़ सुनाई दी—'सती ! सती !'

सत्यवती ने कुमार का हाथ पकड़कर कातर स्वर से कहा—कुमार, यह मेरे शरण भैया की आवाज़ आ रही है। तुम उन्हें किसी तरह बचा लो।

कुमार नायकसिंह ने कुछ आगे बढ़कर गंभीर भाव से पुकारा—'तुम कहां हो ?'

भिक्षु ने पूछा—तुम कौन ?

कुमार—बौद्ध भिक्षु, मैं नायकसिंह हूं। तुम किसी तरह का भय मत करो। सत्यवती सकुशल है और लाला किशनप्रसाद झाड़ से बंधे पड़े हैं।

भिक्षु समीप आ गया और नायकसिंह का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—भाई, तुम्हें स्मरण होगा कि मेरे पिता महाराजा अजीतसिंह ने पाटलिपुत्र के युद्ध में तुम्हारे पिता के प्राण बचाये थे। मेरे पैर में बाण लग गया है। मुझमें भागने-दौड़ने की शक्ति नहीं, इसलिए अब मैं धीरे-धीरे चलता हूं, और मंदार पर्वत की सघन झाड़ी में जो एक कुटीर है; वहां जाकर लेटता हूं। कुमार नायकसिंह, इस समय तुमने जिस अबला के धर्म की रक्षा की है वह सत्यवती मेरी छोटी बहन है। कुम्भ के मेले में उसे को

डाकू उठा ले गया था। इतने समय के बाद अब उसका पता लगा है। तुम सावधान रहना; मिथिला की राजकुमारी को मैं तुम्हारे ही पास छोड़े जाता हूं।

भिक्षु चला गया। सत्यवती दौड़कर पास आ गई और पूछने लगी—कुमार, क्या अभी तुम्हारे पास मेरे 'शरणभैया' थे ? हाय ! वे कहां चले गए ?

नायकसिंह ने कहा—कुमारी सत्यवती, जिन बुद्ध भगवान ने तुम्हारे भाई को आश्रय दिया है, मैंने भी अब उन्हीं की शरण ले ली है। तुम्हें अब कोई डर नहीं है। तुम इस समय शिलाकंदर में बैठ जाओ। मैं जरा यहां-वहां चलकर देखूं, क्या हाल है।

मूसलाधार पानी बरस रहा था। अंधकार इतना गहरा था कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। कुमार नायकसिंह ने बिजली के प्रकाश में देखा कि मंद्रा पगली के समान चली जा रही है। उसके नेत्र उस गहन अंधकार को भेदकर भिक्षु का अनुसरण कर रहे हैं। नायकसिंह को देखकर उसने पूछा—कुमार, भिक्षु कहां गया ?

नायकसिंह ने धीरे से पूछा—क्यों ?

मंद्रा—नायकसिंह, तुमने कभी प्यार किया है ?

नायकसिंह ने कुछ हँसकर कहा—मैं समझता हूं कि प्यार के परिचय देने का न तो यह स्थान है और न यह समय है। जिस बात को मैंने आज लगभग सात वर्ष से अपने हृदय में छिपा रक्खा है, उसे अभिनय के अंतिम अंक में प्रगट करना, न जाने मंगल या अमंगल—......

मंद्रा—कुमार, मैं तुम्हारे प्रणय या प्यार के योग्य नहीं हूं। भाई, क्षमा करना। आज मेरा निर्मम पाषाण-हृदय चूर्ण हो गया है।

मंद्रा अपने आपको भूल गई। उसने अपने मस्तक को कुमार के वक्षःस्थल पर रख दिया। उसके भीगे हुए बालों और वस्त्रों को देखकर नायकसिंह कांप उठे। उन्होंने अकुलाकर कहा—कुमारी मंद्रा, तुम शीघ्र ही राजमहल को लौट जाओ।

नहीं भाई, मेरे जीवन का भी आज अंतिम अंक है। मैंने जिन्हें अपने बाण से विद्ध किया है, अब मैं उन्हीं के चरणों का अनुसरण करूंगी। मेरा संसार और स्वर्ग अब उन्हीं के पद-तलों में है! यह कहते-कहते मंद्रा रोने लगी।

कुमार नायकसिंह ने धीरे-धीरे कहा—'अच्छा, मंद्रा-जाओ। तुम उन्हें मंदार पर्वत की दक्षिण कुटीर में पाओगी।

यह सुनकर मंद्रा उस विषम मार्ग में तेज़ी से दौड़ पड़ी।

पानी बरस रहा है। चतुर्दशी की पिछली रात है। सत्यवती दबे पैरों कुमार के पास आकर बोली—कुमार, यह अभी तुम्हारे पास से कौन चला गया? सत्यवती भय से कांप रही थी। नायकसिंह ने कहा—अंगराज्य की शक्ति मंद्रा!

सत्यवती—वह कहां गई है?

नायक—तुम्हारे 'शरण भैय्या' की चरणशरण में। देखो, ऊपर बुद्ध-शक्ति है और नीचे धरातल में राज-शक्ति। यह सब तुम्हारे भाई की ही महिमा है।

सत्यवती—कुमार, क्या मंद्रा से प्यार करते हो?

कुमार—जान पड़ता है करता हूं, किंतु क्या तुमने हम

दोनों की बातचीत सुन ली है ?

सत्यवती ने लजाकर कहा—हां, सुन ली है, परन्तु कुमार; अब तुम क्या करोगे ?

सती का यह बालिकासुलभ प्रश्न सुनकर नायकसिंह की आंखों में प्रेम के आंसू भर आये। वे बोले—करूंगा कुछ नहीं। संन्यास ले लूंगा।

सत्यवती—नहीं। तुम संसार में रहो। यदि कोई तुमसे प्यार करता हो तो ?

नायकसिंह ने अभिमान के साथ कहा—तो मैं तुम्हारी सलाह मानने को तैयार हूं।

८

धीरे-धीरे बादल फटने लगे और जहां-तहां हजारों लाखों तारे चमकने लगे। पर्वत के एक ओर, एकांत निर्जन वन में एक पुरानी टूटी-फूटी कुटीर है। भिक्षु इसी कुटीर में पत्तों की शय्या पर सो रहा है। वह अपने बाणविद्ध पैर को एक पत्थर के ऊपर रक्खे हुए है और बाईं भुजा का तकिया बनाये हुए सो रहा है। पैर से एक-एक बूंद रक्त टपककर पर्णशय्या को रंग रहा है।

अभी सवेरा होने में कुछ विलम्ब है। बहुत ढूंढ-खोज करने के बाद मंत्रा ने कुटीर के द्वार पर आकर देखा कि भिक्षु नींद में अचेत पड़ा है।

मंत्रा पैरों के पास जाकर बैठ गई। उसने देखा कि तीक्ष्ण बाण मांस के भीतर चला गया है। इससे उसे अपार कष्ट हुआ। उसने अपने अंचल से एक प्रकार के वृक्ष की पत्ती निकालकर

चुटकी से मसली और उसे घाव पर लगा दिया। इसके बाद वह अपने सुंदर केशों को तलवार की धार से काट-काटकर उस पर लगाने लगी और अंत में उसने अपने रेशमी ओढ़ने को फाड़कर तलुए से लेकर घुटने तक के भाग को खूब कसकर बांध दिया। आज भिक्षु के चरणतल का स्पर्श करके मंद्रा ने अपने आपको परम भाग्यवती समझा। इस समय उसके प्रेम का प्रवाह अरोक था। अपने संकल्पित स्वामी के चरणों का चुम्बन करके वह आंसू वहाने लगी। इसी समय भिक्षु ने आंखें खोलकर पूछा—तुम कौन ?

मंद्रा—देव, मैं आपके चरणों की दासी हूं।

भिक्षु—(विस्मित होकर) क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं ?

मंद्रा—नाथ, यह स्वप्न नहीं, सत्य है। तुम मेरे जीवन के देवता हो। तुम्हारे चरण को विद्ध करके मैं आत्मबलि दे चुकी हूं।

मंद्रा का यह सब से पहला प्यार या अनुराग था। इस समय उसके नेत्र पृथ्वी के प्रत्येक पदार्थ को प्रेममय और करुणामय देख रहे थे।

भिक्षु उठकर बैठ गया और बोला—मंद्रा, मैं एक साधारण शरीरधारी हूं, देव नहीं। मैं मनुष्य हूं; किंतु संन्यासी हो गया हूं। इसलिए संसार मेरे लिए निःसार और शून्य है। मेरा मार्ग दूसरा है और तुम्हारा दूसरा। तुम संसार में ही रहो और अपने सुयश से जगत् को उज्ज्वल करो। कभी अवसर आयगा, तो मैं तुम्हारे यश को देख जाऊंगा। मंद्रा, तुम्हारे हृदय में जिस असीम करुणा का उद्गम हुआ है, मैं चाहता हूं वह

अंगराज्य में शत-सहस्र धाराओं के रूप में बहे और सब के लिए शान्तिप्रद हो।

मंद्रा ने हाथ जोड़कर कहा—जीवननाथ, आप संसार को छोड़कर न जायं। याद कीजिये, आप प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं।

भिक्षु—कौनसी प्रतिज्ञा? मुझे तो याद नहीं आती।

मंद्रा—देव, उस दिन आपने स्वीकार किया था कि मैं आत्मबलि देकर अंगराज्य में करुणा का संचार करूंगा। अब आप उसी सत्यपाश में बंधे रहो। भिक्षु महाशय, संसार में ही रहो, इसे मत छोड़ो। आपको देख कर मैं सीखूंगी और आपको अपने हृदय-मंदिर में विराजमान कर मैं आपकी पूजा करूंगी। मुझे अब अपने धर्म की दीक्षा दो। भिक्षुराज, प्रतीत होता है कि बौद्ध-धर्म बहुत ही अच्छा धर्म है।

भिक्षु—कुमारी, क्या तुम मुझे संसारगृह में रखने के लिए तैयार हो?

मंद्रा—सब तरह से। भिक्षु महोदय, अब मेरे हृदय के द्वारे हटके मत जाओ। मैं अपने प्राणों को तुम पर निछावर कर चुकी हूँ।

बौद्ध-भिक्षु ने मंद्रा के निष्कलंक और पवित्र मुख पर अपने दोनों नेत्र स्थापित करके कहा—प्रेममयी, तुम इतनी व्याकुल क्यों होती हो ? जब महादेव जैसे तपस्वी भी इस माया के मान की रक्षा करने में संसारी हो गए, तब मैं किस खेत की मूली हूं ? कुमारी, मैं हिन्दू क्षत्रिय हूं। तंत्र का कलंक और जीवहत्या दूर करने के लिए बौद्धधर्म की सृष्टि हुई है। वस्तुतः बौद्धधर्म हिंदूधर्म से पृथक् नहीं है, और मैं बौद्ध होकर भी हिंदू हूं। प्रिये, तुम्हारे पाणिग्रहण की अभिलाषा से मैंने लगभग एक वर्ष से मिथिला का सिंहासन छोड़ रक्खा है। भिक्षुवेश में अपने आपको छिपाये हुए यह शरणसिंह जंगल और पहाड़ों में रहकर और नगरों में घूम-घूमकर जिस रत्न को ढूंढ रहा था, वह आज इसे मिल गया है।

मंद्रा का हृदय उछलने लगा। इस समय उसका प्रत्येक रक्त-बिंदु आनंद से नाच रहा था। उसने अपने प्रेमपूर्ण नेत्रों को शरण की ओर फिराकर हँसी में कहा—मैं तो पहले ही समझ गई थी कि तुम कोई ढोंगी तपस्वी हो !

शरणसिंह—और इसी लिए तुमने मुझे बाणविद्ध करके स्वयंवर रचने की यह अद्भुत युक्ति सोची थी !

मंद्रा को इसका कोई उत्तर न सूझा। लज्जित होकर वह वहां से तत्काल ही भाग गई।

बाबू अन्नपूर्णानन्द जी

हिन्दी-कहानी-साहित्य में हास्यरस का प्रायः अभाव-सा ही है। बहुत कम लेखक ऐसे हैं जो शिष्ट और सुरुचिपूर्ण हास्य-रस की अभिव्यक्ति करने में नितान्त सफल हुए हैं। बाबू अन्नपूर्णानन्द जी इन्हीं कतिपय कलाकारों में से हैं जो कथा-साहित्य के इस अभाव की पूर्ति के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। आप का जन्म-स्थान काशी है। वहीं आपने शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की और वहीं साहित्य-सेवा का कार्य कर रहे हैं। हिन्दी-क्षेत्र में प्रवेश किये आपको कोई बहुत समय नहीं हुआ, परन्तु अपने प्रशस्त साहित्यिक प्रयासों के आधार पर अपने लिए आपने अच्छा स्थान बना लिया है। आपका हास्य परिष्कृत और सुरुचिपूर्ण होता है। उसमें ग्राम्यता और अश्लीलता का सुन्दर अभाव रहता है।

दावत की अदावत

यह मैंने आज ही जाना कि जिस सड़क पर एक फुट मोटी धूल की परत चढ़ी हो वह फिर भी पक्की सड़क कहला सकती है। पर मेरे दोस्त झूठ तो बोलेंगे नहीं। उन्होंने कहा था कि पक्की सड़क है, साइकिल उठाना, आराम से चले आना।

धूल भी ऐसी वैसी नहीं। मैदे की तरह बारीक होने के कारण उड़ने में हवा से बाज़ी मारती थी। मेरी नाक को तो उसने अपने बाप का घर समझ लिया था। जितनी धूल इस समय मेरे बालों में और कपड़ों पर जमा हो गई थी उतनी से ब्रह्मा नाम का बुड्ढा कुम्हार मेरे ही जैसा एक और मिट्टी का पुतला गढ़ देता।

पांच मील का रास्ता मेरे लिए सहरा का रेगिस्तान हो गया। मेरी साइकिल पग-पग पर धूल में फंसकर खुद भी धूल में मिल जाना चाहती थी। मैंने इतनी धूल फांक ली थी कि अपने फेफड़ों को इस समय बाहर निकाल कर रख देता तो देखने वाले समझते कि सीमेंट के बोरे हैं।

खैर, किसी तरह सड़क खतम हुई और मैं एक लंबी पगडंडी तय करके उस बाग़ के फ़ाटक पर पहुंचा जिसमें आज मेरी मित्र-मंडली सुबह से ही आकर टिकी थी।

फाटक पर खड़े होकर मैंने अपने को झाड़ा-झटकारा।

ज़रूरत थी फावड़े की पर मैंने हाथ ही से अपने शरीर की धूल हटाई।

मैं बिलकुल मस्त हो गया। धूल की वैतरणी पार करने के बाद यह बाग़ स्वर्ग-सा प्रतीत हो रहा था। हृदय धीरे-धीरे आनंद की पेंग मारने लगा। बारह बज गये थे. मित्रों ने रसोई तैयार कर ली होगी, मेरा इंतज़ार कर रहे होंगे। पता नहीं बाटियों को लोगों ने घी में तर कर रक्खा है या नहीं। मैंने कह तो दिया था।

नाहीं, कोई नहीं आवा रहा।

मुरली नाम का कोई आदमी ? लम्बा क़द, चपटी नाक, घूर पर पड़े हुए जूते-सा मुंह।

नहीं।

और माधो नाम का ?

उसने झंझला कर कहा—नाहीं साहब ! माधो नाम का भी कोई नाहीं आवा रहा; और मुन्नू, मंहगी, मंगरू, मेवा मोहन, मुनेसर नाम का भी कोई नाहीं आवा रहा।

मैं अपना सिर पकड़ कर वहीं बैठ गया। मैं फिर बेवकूफ़ बना, इसी एक साल में तीसरी बार।

पहली बार; गंगा में नाव पर इन बदमाशों ने मुझे दावत के लिए बुलाया और भांग पिला कर सोता हुआ छोड़ कर भाग गये। दूसरी बार, खुद सब खा-पीकर मुरारी के मकान पर आये थे, मुझे दावत के नाम पर वहीं रोक रक्खा, पास के किसी कमरे में जलते तवे पर पानी के छींटे दे-देकर मुझे बुलावा दिया कि खाना तैयार हो रहा है; अन्त में रात के बारह बजे मैं खाली पेट रोता कलपता घर लौटा।

और आज यह तीसरी बार। गर्मी का दिन, दोपहर का समय शहर से कोसों दूर और ऐसी ख़राब सड़क !

मैंने उस माली से कहा—ज़रा पांच मिनट के लिए अपने कानों में उंगली तो डाल लो।

काहे ?—उसने चकित होकर पूछा।

अपने दोस्तों को मैं गाली दूंगा।

आप बहुत थके-मांदे जान पड़ते हैं। जल पीजिएगा ?

मैं इस समय मुरारी के खून का प्यासा हूं। आये तो उससे कह देना।

पास ही में मुरली का मकान था। वहां गया, वह भी न मिला। माधो से भी भेंट न हुई। मैं समझ गया कि सबके सब जान-बूझ कर कहीं छिपे हैं। यह तो वे सब जानते ही होंगे कि इस समय मैं वनैले सूअर से भी ज्यादा खतरनाक हो रहा था।

मैं अपने मकान की ओर चला। रास्ते में पं० नेकीराम से भेंट हो गई। वे इसी ज़िले में बी० एन० डबल्यू० रेलवे के राहुल-गंज नामक स्टेशन के स्टेशनमास्टर हैं। मेरा कुछ एहसान उनके ऊपर था, इससे मेरा लिहाज़ करते थे।

नमस्कार-प्रणाम के बाद मैंने पूछा—कहिए, कहां जा रहे हैं?

दो महीने की छुट्टी मैंने मांगी थी जो मंज़ूर हो गई है। एक हफ्ते में घर जानेवाला हूं। आज कुछ सामान ख़रीदने शहर आया था। आप तो कभी आते ही नहीं, कई बार प्रार्थना की कि एक रात वहीं बसेरा कीजिए।

अच्छा आऊंगा। हो सका तो आपके जाने के पहले ही आऊंगा।

उस समय मैं भूखा-प्यासा अधिक बातें नहीं कर सकता था। मैं किसी तरह गिरता-पड़ता घर पहुंचा।

तीन दिन तक मुरारी, मुरली, माधो या मोहन किसी की सूरत न देख पड़ी। चौथे दिन सबके सब एक साथ ही मेरे मकान पर आये। पूर्व इसके कि मेरा पारा चढ़े उन सबने हँसना शुरू

रही है। ऊपर निर्मल निरभ्र आकाश का वितान है, नीचे हरी-भरी पृथ्वी का प्रसार है।

अच्छा चुप रहो।

आदर्श ऋतु है, सुन्दर स्थान है, मनोरम दृश्य है। इससे अधिक क्या चाहिए ? निश्चित होकर प्रकृति का निरीक्षण करो।

तुम न मानोगे ?

अच्छा, कविता करो या कहानी कहो, रात कट जाएगी। ज़रा यह सोचो कि इस समय तुम लोग स्वर्ग के कितने निकट हो।

मैंने पं० नेकीराम के नौकर से कह दिया था। वह एक हाथ में लालटेन और दूसरे में मेरी थाली लिये पहुंचा। मैं वहीं बैठकर खाने लगा। मोहन ने ऊपर से पूछा—अजी हम लोग क्या खाएंगे ?

मैंने कहा—क्या बताऊँ ? बड़ा अफ़सोस है। इसी अफ़सोस में मैं आज कुछ ज्यादा खा रहा हूं।

मर जाओ खाते-खाते—मोहन ने कहा।

यह कचौरियां बड़ी लाजवाब बनी हैं। कहो तो मैं एक टुकड़ा तुम लोगों के देखने के लिए ऊपर फेंकूं ?

इसका मुझे कोई उत्तर तो न मिला पर कुछ लोगों के कराहने की आवाज़ मुझे साफ़ सुनाई दी। मैंने फिर कहा—अजी, इस रबड़ी की सुगन्ध से तो दिल हरा हो गया। तुम लोगों तक इसकी सुगन्ध पहुंच रही है या नहीं ?

इस बार भी मुझे कोई उत्तर न मिला। मैंने ऊपर अपनी निगाह उठाई और कहा—आपने अंधेरे में किसी बिल्ली की आँखें चमकती

हुई देखी हैं ? ठीक उसी तरह की चार आंखें टंकी के ऊपर से मेरी ओर आग फेंक रही थीं।

खाना ख़तम करके मैं वहां से चलने लगा। चलते हुए मैंने कहा—ऊपर एक घड़ा पानी मैंने रखवा दिया है। ख़ाली पेट ठंडा जल पीना, आयुर्वेद में त्रिदोषनाशक माना गया है।

थोड़ी दूर जाकर मैं फिर लौटा। एक बात मैं भूल गया था। मैंने कहा—हां, एक बात और। पं० नेकीराम ने कहा कि रात में अगर किसी ने शोर किया तो वे पुलिस को खबर दे देंगे कि कुछ बाहरी लोग बिना इजाज़त स्टेशन की टंकी पर चढ़ गये हैं और ऊधम मचा रहे हैं।

तुम्हारा नाश हो—मुरारी और मोहन ने कहा।

तुम्हारा सत्यानाश हो—मुरली और माधो ने कहा।

ग्यारह बज गये थे। स्टेशन पर आकर मैं लेट रहा। राहुलगंज ब्रांच लाइन का एक स्टेशन है। रात में गाड़ियां नहीं आती जातीं। स्टेशन पर इसलिए शान्ति थी।

सुबह साढ़े तीन बजे की गाड़ी से पं० नेकीराम रवाना हो गये। मैं भी उसी गाड़ी से रवाना हुआ। पंडितजी ने नये स्टेशन-मास्टर से, जो उनके मित्र थे, चलते समय कह दिया कि उनके मेहमान पानी की टंकी पर सो रहे हैं, उन्हें सुबह छः बजे की गाड़ी के समय सीढ़ी लगाकर उतार दीजियेगा।

घर आकर मैं कई दिन तक बाहर नहीं निकला। मुरारी आदि आते थे और हाथ मल कर लौट जाते थे।

———

श्री वाचस्पति पाठक

हिन्दी साहित्य के लेखकों में आपका आदरणीय स्थान है। आपको प्रारम्भ से ही उच्च-कोटि के साहित्यिकों की संगति का चाव था। आपकी साहित्यिक रुचि और साहित्य-सृजन की प्रेरणा इसी सुयोग का फल है। आपने कविताएं भी लिखी हैं और कहानियां भी। आजकल आपकी रुचि कविता से कुछ हट गई है और आप कहानियों की ओर ही प्रवृत्त हैं। शैली और कला की दृष्टि से आपका स्थान प्रसादधारा में है। आप इस धारा के सबसे सफल अनुयायी माने जाते हैं। वेदना और अभाव का करुण और सजीव चित्रण करने में आप सिद्धहस्त हैं। भाषा आपकी सरल और विषयानुरूप होती है। मनोभावों का विश्लेषण आप बड़ी कुशलता से करते हैं। आपकी कहानियों के दो संग्रह—"द्वादशी" और "प्रदीप"—छप चुके हैं।

आपका निवास-स्थान प्रयाग है। आपका जन्म सन् १९०६ में नवाबगंज, काशी में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा भी वहीं घर पर ही हुई। आपका रचनाकाल सन् १९२६ से प्रारम्भ होता है। तब से आप निरन्तर साहित्य-सेवा कर रहे हैं। आजकल आप लीडरप्रेस, प्रयाग के प्रकाशन-विभाग के कर्त्ता-धर्त्ता हैं।

कागज़ की टोपी

एक छोटी-सी झोंपड़ी है। रात के आठ बज गये हैं। उसमें दीपक नहीं जला है। आकाश में जो चांद उगा है, उसी का धूमिल प्रकाश, इस झोंपड़ी में दो प्राणियों के मलिन चित्र दीवारों पर अंकित कर रहा है। एक तो बुढ़िया, जिसकी उमर ५० से कम नहीं है। दूसरा जो सोया हुआ है, वह पांच-छः वर्ष का बच्चा है। वह उस बुढ़िया का पोता है। यही—ठीक इस झोंपड़ी के मलिन चित्र की तरह—उस बुढ़िया का आधार है। इस झोंपड़ी में बस यही दो, चित्र और ये प्राणी—शेष और सब, जो होना चाहिए, कुछ भी नहीं दीखता है। सब जैसे अन्धकार में लुप्त हैं; पर सच तो यह है कि उनके पास कुछ है ही नहीं। काल ने ठीक उन्हें वैसा ही विचित्र बना दिया है।

बुढ़िया शाम ही को गांव के कई घरों में घूम कर अपने बच्चे को खिला आई है। अपने खाने के लिए भी उसके आंचल में कुछ भुना हुआ दाना बंधा है; पर इस शीत की रात में वह पहले बच्चे को सुला देना चाहती है। उसके गल कर सिमटे हुए पेट में भूख न भी हो; तो कुछ आश्चर्य नहीं है। क्योंकि वह उधर कुछ भी ध्यान न देकर बड़ी तल्लीनता से लोरियां गुनगुना रही है। बच्चा अभी सोया नहीं है। उसकी स्निग्ध उज्ज्वल दो बड़ी आंखें अपनी गम्भीर नीरवता में स्तब्ध हैं।

वह बच्चा शाम को जितने भी घरों में दादी के साथ घूमा है, सभी जगह उसने एक ही चर्चा सुनी है। सब ने उसकी दादी से चन्द्रग्रहण में चलने के लिए बातें की हैं। जब वह अपनी दादी की गोद से अलग होकर खेलने के लिए लड़कों की पंक्ति में गया, तब उनमें से कोई भी उसके साथ प्रतिदिन का चिर-परिचित खेल नहीं खेल पाया है। उन सब ने उससे अनजानी ही बातें की हैं। सब अपने उत्साह में रम रहे हैं। कौन खिलौने, बाजा, कपड़े और टोपियां लेगा? इसी सूचना ने सबको निहाल कर दिया है। उस बालक के मन में ऐसी चिन्ता कभी उदय नहीं हुई है। वह विकल हो गया है।

बुढ़िया लोरियों की मधुरता में और लड़का अपने विचारों में लीन है। वे एक दूसरे से अपने में एकदम अलग हो रहे हैं; पर, बच्चा अपने विचारों की गुत्थियों को अकेले नहीं सुलझा पाता है। वह दादी को पुकारता है······दादी!······ओ री दादी!

दादी लोरी बन्द कर देती है, वह उत्सुकता से पूछती है—हां, क्या है बेटा?

कहां ग्रहण लगेगा दादी?—वह पूछता है,—लल्लू, छैल, मिन्नी और वह छोटी भी कहती है कि वहां जायँगे?

बुढ़िया के मुंह पर स्नेह चमक रहा है। वह उसकी बातें सुन कर घबरा जाती है। वह निराश स्वर में कहती है—बनारस में। यहां से बड़ी दूर पर ग्रहण लगेगा।

लड़के को इतने से सन्तोष नहीं होता है। वह बड़े आश्चर्य

से पूछता है—तो फिर मिन्नी और छोटी कैसे जाएंगी ? वे कहती हैं—हम वहां खिलौने लेंगी—कपड़े लेंगी—कह कर वह बुढ़िया की ओर बड़ी उत्सुकता से देखता है। वह चुप रहती है। उससे लड़के का कौतूहल बढ़ता है। वह फिर पूछता है—तो क्यों दादी, सचमुच वहां खिलौने मिलते हैं।

मिलते होंगे बेटा !—उसकी उत्सुकता से वह निराश हो रही है। उसके मन में एक अस्पष्ट चित्र उदय हो रहा है। वह खीझ कर बोलती है—वहां बड़ी भीड़ होती है, जाड़े की इस रात में वहां सब नहाते हैं, बस और कुछ नहीं होता। वह अपना विरोध प्रकट करने के लिए एक दीर्घ श्वास छोड़ कर चुप हो जाती है।

लड़के का आश्चर्य और बढ़ जाता है। वह और आतुरता से पूछता है—बड़ी भीड़ होती है ?

और क्या !—वह क्षोभ से भर कर कहती है—ऐसी भीड़ होती है, कि कितने दब जाते हैं ! एक दूसरे पर गिर कर मर जाते हैं ! और बेटा, एक दूसरे से छूट कर उस भीड़ में भूल जाते हैं !—बुढ़िया की आंखों में आंसू भर आते हैं, वह भरे हुए कंठ से कहती है—फिर भला हम वहां कहां जायंगे ? मेरे बच्चे, तू मेरी गोद से छूट जायगा। तुझे कैसे संभालूंगी ?—वह उसे गोद में उठा लेती है, चूमती है। उसकी आंखों से आंसू की दो बूंदें बालक के सिर पर गिर जाती हैं। वह उसे अपने आलिंगन में चिपटा लेती है।

बालक के चिपकने से उसके प्रेम में उफान आ रहा है। वह

जैसे लय हुई जा रही है। यह बच्चा इसे जैसे उसके प्यार का वन्दी होकर समझ रहा है। उसे राह नहीं मिल रही है। वह जैसे मुक्त होने के लिए पूछता है—तब, हम न चलेंगे दादी ?

उसकी इस निराश वाणी से बुढ़िया का हृदय कसक उठता है। अब उसके हृदय की इच्छा का दमन उससे नहीं हो सकता, उसके लिए वह सब कुछ कर सकती है। वह एक नवीन उत्साह से पूछती है—तू चलेगा बेटा ?……अच्छा मैं जरूर चलूंगी; और सब जायँगे तू ही न जायगा ! मैं तुझे जरूर लिवा ले चलूंगी। मेरा राजा !……मेरा बेटा !—वह उसे चूमती है। दोनों हँसते हैं। दोनों प्रसन्न हैं। फिर दोनों परस्पर विश्वास रख कर सो जाते हैं।

(२)

बालक अब उसे दिन-भर से तंग कर रहा है। हर वार, प्रत्येक समय वह एक ही बात करता है, उसे आश्वासन मिलता है, विश्वास होता है; पर फिर वह उसी की गांठ बांध लेना चाहता है। उसकी रट कम पड़ती ही नहीं है। गांव के चलने वाले और बालकों के पास भी वह दौड़-दौड़कर जाता है। वह अब किसी से कम नहीं है। इसी विश्वास से वह सब को देखता है।

उसकी दादी संकोच में गड़ी हुई है। वह पहले अपने आप अपने ही चलने की नितान्त अनिच्छा प्रकट करती है। अपनी गरीबी में, जीवन-यापन से अधिक के लिए किसी के सिर का बोझ बनना उसे कभी पसन्द नहीं हुआ है। और फिर का

में—पुण्यकार्य में······! अपनी इच्छा को मसल कर वह इसी से अपने को बचाती रही है। पर, अब वह वैसा नहीं कर सकती। वह उद्विग्न है। सबसे विनय कर रही है। यह बुढ़िया को काशी नहलाने का पुण्य-लाभ!—हाथ जोड़ कर—वह गांव भर को बता आई है। उन्हीं लोगों के विश्वास पर वह जा रही है। अब मरने के पहले उसकी जैसे यही साध है। सब के साथ वह भी उत्साह दिखा रही है। उसके भी मन में उमंग है।

सब के साथ वह भी तैयार हो गई है। उसने अपनी पोटली सिर पर रख ली है और बच्चे की अंगुलियां उसके हाथ में हैं। अपने सब साथियों के पीछे उसने अपना मार्ग पाया है। उसकी निरीहता में जैसे उसका यही स्थान है। उस लड़के ने जैसे और सब उसका खो दिया है। वह अब जैसे एक धुन में है। वह अपने ही मन में लीन, मौन और निर्विकार बन गई है। साथ की स्त्रियां गीत का स्वर निकाल रही हैं, पर लड़का मानता नहीं है। वह रह-रह कर उसे खींचता है, बढ़ता है। वह एक से दूसरे लड़के के पास पहुंच जाना चाहता है। सब देखें—वह भी चल रहा है। उसकी दादी नहीं पहुंच रही है! अच्छा······! वह लल्लू को पुकारता है, छैल से बातें करता है।—छोटी! छोटी···! लो सब चीखने लगे हैं। माताएं घबरा उठती हैं। डांट पड़ती है। मार की नौबत आ गई है। कितने डर दिखाये गये हैं। थोड़ी-सी शान्ति होती है, फिर वही—सब जैसे गीत के प्रवाह में कल-कल कर बह रहे हैं।

(३)

लड़के ने जैसे बड़ी प्रतीक्षा की है। अब उससे होने की नहीं। इस विशाल नगर में आकर उसका धैर्य्य वृक्ष के कोमल पत्ते की तरह कांपने लगा है। उसका लोभ सर्वग्रासी मुंह फाड़ कर खड़ा है। उसकी बुद्धि काम नहीं दे रही है। वह रह-रह कर चिल्लाता है, अनुनय करता है—दादी ! तूने मुझे कुछ नहीं ले दिया,—ऊँ, ऊँ, ऊँ।

वह कहती है—अब तू दिन-भर रोयेगा ?

वह तनिक चुप होता है। फिर कहता है—दादी ! मुझे भी मिठाई दिला दे !

आह, तूने ग़ज़ब कर डाला रे !—दादी उसकी बात सुन कर चीख़ उठती है—यह नई आदत सीखी है ?

बालक डर जाता है। उसने अपनी दादी से कभी फटकार तो पाई नहीं है। उसकी डांट से वह जैसे अपमानित होता है। लज्जा से अभिभूत होकर वह दादी की गोद में छिप जाता है। वह अब जैसे कुछ नहीं बोलेगा।

बुढ़िया इसे समझ रही है, वह कहती है—बेटा ! अभी तू ने गुड़ खाया है न ? वही तो मिठाई है, तू व्यर्थ में हठ करता है। इतने पैसे मेरे पास कहां हैं ? ले यही तो मेरे पास पैसे हैं, इनसे जो चाहे तू ले—कहकर बुढ़िया अपनी गांठ खोलने लगती है; पर बच्चा उसे रोकता है।—ना-ना, तू ही ले देना।—वह अभी अपने को उसकी गोद में ही छिपाये रखना चाहता है।

उसी समय शहर चलने की तैयारी हो गई है। लाल, पीली और काली बूटियों की चादरें ओढ़े उन औरतों का गरोह, जैसे रंग-बिरंगी तितलियों के झुण्ड हैं। उसके पीछे बुढ़िया भी किसी सूखे वृक्ष के ठूंठ की तरह लगी है, जिसे छोड़ कर वे उड़ी जा रही हैं। उनकी आंखें विस्मय से विमुग्ध हैं,। नगर उनके लिए अलौकिक सत्ता है जिसको उनकी कल्पना इन्द्रलोक बना देती है। बच्चे और भी प्रसन्न हैं। घोड़ा, गाड़ी, मोटर और साइकिलें—इनकी पों-पों और टुन-टुन कितने ग़ज़ब हैं। वह उछल रहे हैं! मोटर से कीचड़ उछल कर पड़ने पर भी सब हँस रहे हैं! कैसा अच्छा यह उनका आश्चर्य और भाग्य है!

बाजार में पहुंचकर खरीदारी शुरू हो गई है। वह कुछ इधर, कुछ उधर दूकानों पर हो रही है। शहर की चीजें, अद्भुत चीजें ले रही हैं। बच्चे अलग अपने मन की चीजें देख कर शोर कर रहे हैं। तब तक एक बच्चा चिल्लाता है—देख-देख कर मेरी टोपी!—उसकी सुनहले तारों से चमचम चमकती हुई टोपी है।

बुढ़िया की गोद में लड़का अप्रतिभ हो गया है। उसकी आंखों में आंसू भर आये हैं। वह दादी की गोद से शून्य दृष्टि से देखता है, भय से कुछ कहना नहीं चाहता है। दादी के मुख की पीड़ा को वह जैसे समझता है। इसीलिए वह अपनी आह को दबाकर दूसरी ओर देखने लगता है। एक ओर देख कर कहता है—अहा·······ओ दादी! वह देख! कैसी अच्छी लाल-हरी टोपी!

दादी देखती है। एक आदमी लाल-हरी कागज़ की टोपियों की छतरी-सी लिये खड़ा है। वह रह-रह कर बोल रहा है— ले लो, ये लाल-हरी टोपियां, तीन-तीन पैसे में। बुढ़िया यह सुन जैसे उत्साह में आ गई है। वह उसे ले रही है। बच्चा मुग्ध हो रहा है। दादी ने अपनी छोटी-सी गांठ खाली कर दी है। उसे टोपी पहना कर वह जैसे उससे अधिक पा गई है। बहुत अधिक लाभ में जैसे प्रसन्न है। वह चुप है। आनन्द-विभोर है। वह केवल प्रसन्न दृष्टि से उसे देख रही है, बच्चा जैसे श्रीमान् है। वह जैसे आज उसका नहीं है। वह दूर से—बहुत चाहने, प्यार करने पर, आज उसका बनकर आया है। ऐसा प्यार! वह अकिंचन कुछ न बोलेगी। केवल अभी दृष्टि भर देख तो ले। वह उसे प्रसन्न कर सकी है। वह गर्व-स्फीत है।

बच्चा कैसा सच का राजा है। अभिमान से भरा है। अब वह किसी की ओर नहीं देख रहा है। वह अपनी कागज़ की टोपी लगाता है, उतारता है, देखता है, छाती से चिपकाता है, हँसता है। वह अपने में प्रसन्न हो रहा है। वह लाल-हरी टोपी उसकी आंखों को रंगीन कर रही है। रोशनी के प्रकाश में उसके कपड़े को रंगीन कर रही है। वह देखता नहीं है, उसके मुख को भी रंगीन कर रही है। वह वैसा ही प्रसन्न है। अब वह अपने में ही चीख़ता है, हँसता है और बातें करता है। वह उसी में भूल गया—रम गया है।

(४)

बुढ़िया सब से अलग पड़ गई है। उसका साथ छूट गया

है। वह स्तम्भित हो गई है। इस अपरिचित जन-समूह में अब वह अकेली है। अब—आह······आंधी-सी चलने लगी है। ऊपर आकाश में बादल धीरे-धीरे गुडुम-गुडुम कर रहे हैं। उसका मन भीतर-बाहर हो रहा है। उसे बच्चे को बचाना है। उसकी व्याकुलता उसी के लिए बढ़ रही है। उसे कहीं स्थान नहीं है। वह ऊंचे-ऊंचे महल, उनके आदमी, उसकी कहीं पहुंच नहीं है। आशा नहीं है। वह विपद् में फंसी है। वह 'अस्सी' की ओर बढ़ रही है। वहीं वह ठहरी थी। अब भी वहीं जाकर रुकेगी, वह बच्चे को छिपा कर भाग रही है।

वह भाग रही है। जल्दी में है। बच्चे को संभाल रही है। बच्चा उसकी उद्विग्नता नहीं समझता है। वह रह-रह कर अपनी टोपी उसे दिखा देना चाहता है। उसकी ऐसी अच्छी टोपी, उसकी दादी मजे में देख तो ले; वह व्याकुल है। उसकी तृप्ति असन्तोष में ढल रही है। वह अधीर होकर पुकार उठता है—दादी !······

दादी बोलती नहीं है। वह उसे चिपकाये जा रही है। सर्दी की रात है। हवा है। बादल हैं। इन सब का रूप उसके मन में एक दुनिया बन गई है जिसमें वह अकेली भाग रही है और सब जैसे उससे मुक्त हैं। उसकी आंखों के सामने का सारा दृश्य जैसे उस दुनिया के बाहर है; जहां से उसके लिए कोई आशा, सहानुभूति, प्रेम और करुणा नहीं है। वह सब से अलग है। झर···झर···झर···बड़ी बूंदों की झड़ी लग गई है। वह भाग रही है। बच्चे के कपड़े गीले हो गए हैं।

बच्चा भीग गया है। दादी की छाती में छिपे रहने पर भी उसके सिर से पानी चू रहा है। उसके लटीले बालों से फिसल कर छोटी-छोटी बूंदें चू रही हैं, जिनमें टोपी का रंग धुल रहा है। टोपी भीग कर लत्ता हो चली है। बालक उसे सिर पर और दबाये जा रहा है; जैसे अपनी चिर-संचित साध को उस झड़ी से बचा रहा है।

'अस्सी' का घाट सूना पड़ा है। पानी आकर निकल गया है; पर बादल अब भी आकाश में छिटके हैं। उनके बड़े-बड़े टुकड़े घूम घूम कर चांद को घेर रहे हैं। उस अन्धकार में गैस की बत्ती अपनी रोशनी चुपचाप ज़मीन पर गिरा रही है। सारा मैदान विधवा के हृदय की भांति शून्य और धूमिल है। उसके सब साथी दूर न जाने किस कोने में पड़े हैं। उस मैदान के एक असहाय छोर में मलिन, निरीह और टूटी-स्मृति-सी बुढ़िया पड़ी है। उस पर एक पेड़ की छाया है। वह वहां अपने को अकेले देख रही है। बच्चे का शरीर भीगने पर भी उसे गर्म मालूम पड़ रहा है। उसका मन और भी बैठ रहा है। घरों में—छाया में न जाने कितने आदमी भरे पड़े हैं। सबकी सांस उसे जैसे स्पर्श कर जाती है। वह अपने मन में समझती और कानों से सुनती भी है; पर वह उन तक जा नहीं पाती है। उसकी निरीहता को कहीं शरण नहीं है। साहस के अभाव ही में वह मौन है।

पीपल के पेड़ का सहारा लिए वह पड़ी है। वह थक गई है। अपने शरीर को उसने एकदम छोड़ दिया है। उस गीले में वह

सो भी नहीं सकती। वह शिथिल होकर और भी अवसाद में वही जा रही है। हवा नहीं चल रही है, फिर भी पीपल के घने पत्ते हिल रहे हैं—चमक रहे हैं। उनका शीतल स्पर्श उसके मन को कंपा जाता है।

बच्चे की देह जलते तवे-सी लाल है। सम्पूर्ण शरीर में खून के रवे जैसे पड़े हैं। वह अपने उत्साह की दौड़ में शिथिल हो गया है। वह वहां से बढ़ भी नहीं पाता है। दादी उसे जकड़े हुए पड़ी है। इसी से जैसे क्षोभ में अवसन्न है। उसके हृदय पर वह बन्धन जैसे पहाड़ बन कर भार दे रहा है। वह ऊब रहा है। एक कांपती आवाज़ निकलती है—दा· · ·दी !

हां—वह आह भर कर कहती है—क्या है लाल !—वह अपने गीले कपड़ों के घेरे के भीतर झांक कर बड़े कातर स्नेह से उसे देखने लगती है।

बच्चे को जैसे सहारा मिल जाता है। वह अपनी मन की गांठ खोल कर धीरे से कहता है—मेरी अच्छी टोपी, दादी !—उसने अपनी टोपी सिर पर दबा ली है।

बुढ़िया के मुंह से 'हां' भी नहीं निकल पाता है। उसका हृदय जैसे चिर गया है। बालक के काले हो रहे होठों पर बिखरी हँसी उसके कलेजे में और भी तीर बन कर धंस गई है। वह उसी पीड़ा में एक क्षण उसे देखती है, फिर उत्तर में केवल सिर हिला देती है, और भी जकड़ कर उसे अपनी गोद में छिपा लेती है।

बुढ़िया अपने क्लान्त शरीर में बेसुध पड़ी है। उसकी पीड़ा में एक ही कल्पना सिसक रही है—मेरी अच्छी टोपी···! अभी दो क्षण पहले की देखी, सिकुड़ी धुले हुए रंग की पिचकी-पिचकी टोपी, पहले-सी नई बन कर उसके भावों में रंग भर रही है। सचमुच वह उसी नशे में पड़ी है। उसके हाड़ों की ठठरी को पवन हिला देता है। वह जाग जाती है। फिर भी बच्चे की प्रसन्नता की निधि, वह लाल-हरी टोपी, उसे ढंक लेती है।

बच्चे का प्यार लुट गया है, इसी से वह लुट गई है। वह पीड़ा में डूब गया है, इसी से वह डूब गई है! वह बेहाल है, अशक्त है, असहाय है, मौन है, जल रहा है—कांप रहा है; इसी से उसकी दादी बेहोश है, निरीह है, निरवलम्ब है, चुप है, मर रही है—हिल रही है। वह अपने में नहीं है—खो गई है।

रात भीगे पैरों भागी जा रही है।

पत्ते खड़खड़ा रहे हैं। उस प्रशांत नीरवता के हृदय की धड़कन जैसे बढ़ रही है। एक 'ठक' की आवाज़ होती है। कोई सामने आकर जैसे खड़ा हो जाता है। ओह······वह लम्बे लबादे में काली झब्बेदार पगड़ी से लैस हाथ की लम्बी मोटी लकड़ी पर अकड़ दिये एक सिपाही खड़ा है। उसे इस सुनसान रात में भागती हुई नदी की जलधारा को देख कर जैसे 'ठक' मार गया है। वह निश्चिन्त और सुखी है! उसने बुढ़िया की ओर देखा भी नहीं; पर वह एक बार फिर कां[illegible] गई है।

अब रात छिप चली है। ऊषा की राह में बादलों की लाल पहाड़ियों को वेध कर, सुनहली किरणें जल पर निकल आई हैं। उसकी गोद में उसका बच्चा काला पड़ गया है। बुढ़िया की पलकें जैसे गिरने लगी हैं, पर वह स्वयं लुढ़क जाती है, जैसे—प्रभात के लिए पांवड़े बिछा गई है।

श्री ऋषभचरण जैन

आप दिल्ली के एक प्रतिष्ठित जैन परिवार से संबंध रखते हैं। आपका जन्म सन १६११ में हुआ। लिखने की ओर आपकी रुचि बहुत पहले से ही है। आप अभी १६ वर्ष के थे जब आपकी सर्व-प्रथम कृति 'मास्टर साहब' हिन्दी-पुस्तक-कार्यालय दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुई थी। तब से आप दर्जनों उपन्यास और कहानियाँ लिख चुके हैं। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में प्रेमचन्द जी की कला और शैली का प्रभाव स्पष्ट है। 'भाई' नामक उपन्यास का वातावरण इस बात का प्रबल प्रमाण है। परन्तु उसके शीघ्र ही पश्चात् आप उस मार्ग से हट कर उग्र जी के यथार्थवाद की ओर अधिक आकृष्ट हुए। आपकी रचनाओं में नग्न वास्तविकता का चित्रण रहता है। सत्य की मात्रा लिये हुए भी ऐसा चित्रण सदैव ग्राह्य नहीं होता।

आपकी भाषा सजीव और भावपूर्ण होती है। प्रस्तुत कहानी आपकी एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें विविध वर्गों के विशिष्ट संस्कारों का सुन्दर दिग्दर्शन है।

दान

चंदूलाल, रामचन्द, ज्योतिप्रसाद और हुकूमतराय चार आदमियों के नाम हैं।

चन्दूलाल एक घड़ी की दूकान में बीस रुपये का नौकर है। स्त्री है, एक बच्ची है। गुजर-बसर मुश्किल से होती है। कोट बरसों में बदलता है, जूता टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, टोपी का खर्च बचाने के लिए नंगे-सिर नौकरी पर जाता है। रामचन्द, साधारण गृहस्थी हैं। जाति के वैश्य हैं। कृष्ण के सच्चे भक्त हैं। गीता का नियमित पाठ करते और माथे पर चन्दन पोत कर घर से बाहर निकलते हैं। अनाज की मंडी में दलाली करते हैं। कृष्ण की कृपा से खासी आय हो जाती है। घर के लोग प्रसन्न वा सुखी हैं। ज्योतिप्रसाद किसी अर्द्ध-सरकारी दफ्तर में हेड क्लर्क हैं! वेतन तीन सौ रुपया है। कपड़े रेशमी पहनते हैं। टोपी फेल्ट लगाते हैं। 'अबदुल्ला' का सिगरेट पीते हैं। प्रायः इंटर में और कभी-कभी सैकिंड क्लास में सफ़र करते और बीसों रुपया अपने और बच्चों के स्वास्थ्य की खोज में डाक्टर-वैद्यों को अर्पण करते हैं। हुकूमतराय, मोटी तोंद-वाले, क्षत्रिय के अपभ्रंश खत्री हैं। कुल्लेदार पगड़ी लगाते हैं। मक्खनजीन का कोट या रफल का अंगरखा पहनते हैं। दोनों हाथों की उंगलियों में कई-कई अंगूठियां भरे रहते हैं। चूड़ीदार पायजामा पहनते हैं, रेशमी

कमरबंद हमेशा लटकता दिखाई देता है, और सलीम-शाही जूते या पम्प-शू धारण करते हैं। प्रायः मोज़ों का इस्तेमाल भी होता है, आंखों में सुर्मा और मुंह में पान चौबीस घंटे रमा रहता है। रायसाहब की पदवी प्राप्त कर चुके हैं, और '''साहब' की जगह '''बहादुर' बनने की मन में बड़ी लालसा है।

एक दिन ये चारों आदमी शहर के भिन्न-भिन्न भागों से अपने-अपने घर की तरफ़ चले।

(२)

रमजू एक भिखारी का नाम है। फटी-सी, सर्व-परिचित गूदड़ी ओढ़ सड़क के किनारे बैठा है। हाथ-पैर कांप रहे हैं, या कंपाये जा रहे हैं। शरीर जगह-जगह से ज़ख्मी हो गया है। मुंह पर घोर दीनता का भाव है। नीचे का होंठ फैल गया है। दांत निकले पड़ते हैं।

चन्दूलाल सामने से निकला, तो रमजू ओंठ फैलाकर दांत निकालकर चिल्ला उठा—बाबा, एक पैसा!'''तेरे बच्चों की ख़ैर'''!

इस आर्त्त स्वर ने या इस शुभ कामना ने चन्दूलाल के पैर बांध दिये। जेब में एक ही पैसा था। सोचा था, लड़की के लिए दाल-सेव लेते चलेंगे। अब वह इरादा बदल गया, और पैसा रमजू की तरफ़ फेंक दिया।

कंपकंपी क्षण-भर को रुक गई, ओंठ सिकुड़ गए, दांत भीतर चले गए। पैसा उठाकर माथे से लगाया गया, और कृतज्ञ कण्ठ से रमजू ने कहा—दाता तेरा भला करेगा।

चन्दूलाल आगे बढ़ गया।

'छन्न' से आवाज हुई, और इस पैसे ने रमजू की थैली में पहुंचकर अपने जाति-भाइयों से मिलने की सूचना दी।

(३)

यह आवाज़ विलीन हुई थी कि रामचन्द आ पहुंचे। माथे पर अब तक चन्दन पुता हुआ था। मुंह से कृष्ण का नाम निकल रहा था, और मन अनाज की मण्डी में घूम रहा था।

रमजू का भाव झट वदल गया। ओंठ फैल गए, निकल आए, शरीर कांपने लगा, और स्वर में वही कातरता फूट निकली। हाथ फैलाकर चीख़ पड़ा—वावा, एक पैसा !···तेरे वच्चों की खैर······!

रामचन्द को कृष्ण-नाम और अनाज की मंडी के चिंतन में कोई व्याघात न हुआ, और वह विना उधर देखे आगे वढ़ गया।

रमजू ने सतृष्ण नेत्रों से देखा और धीरे से कहा—दाता तेरा भला करेगा।

यह वाक्य अभ्यास-वश मुंह से निकल गया था, या सच-मुच उसकी ऐसी इच्छा थी, इसे हम नहीं जानते।

रामचन्द थोड़ी दूर आगे वढ़ा था कि किसी ने रोक दिया। नज़र उठाकर देखा, तो एक जटाधारी संन्यासी ! रामचन्द ने अवाक् होकर उन्हें ताका, और फिर दोनों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

संन्यासी कर्कश स्वर में वोला—वोल, साधु की इच्छा पूरी करेगा ?

रामचन्द सहमकर वोला—कहिए क्या है महाराज ?

संन्यासी ने इधर-उधर देखा। सड़क पर कोई न था। फिर वैसे ही कर्कश स्वर में वोला—तेरे मुंह में कृष्ण का नाम है। संन्यासी की इच्छा तू ही पूरी कर ! तेरा कल्याण होगा।

रामचन्द हाथ जोड़कर वोला—कहिए न महाराज ?

संन्यासी के भंडारे के लिये तुरन्त सवा रुपया दे। संन्यासी ने आंखें निकालकर कहा—तेरी जेब में है, देख, अभी निकाल; कल्याण होगा।

रामचन्द्र क्षण-भर को ठिठका, सो संन्यासी ने ज़मीन पर पैर पटककर कहा—नहीं देता? अच्छा ले, जाता हूं, याद रख, तेरा सर्वनाश हो जायगा?

रामचन्द्र एड़ी से चोटी तक लरज़ जाता है, और सवा रुपये का मोह त्याग देता है।

सवा रुपया लेकर संन्यासी लाल आंखें किए आगे बढ़ता है।

(४)

रमजू अपनी टेर शुरू करता है—बाबा, एक पैसा!··· ···तेरे बच्चों की ख़ैर···!

अब ज्योतिप्रसाद आये। फ़ेल्ट तिरछी हो गई है। रेशमी कोट के बटन खुल गए हैं। कमीज़ झक-झक कर रही है। पतलून की 'क्रीज़' कुछ बिगड़ गई है। बूट अभी-अभी रुमाल से साफ़ किये गए हैं। सिगरेट से धुआं निकल रहा है।

रमजू की टेर कान में पड़ती है, तो थम जाते हैं। क्षण-भर विचित्र दृष्टि से इस दीन भिखारी की तरफ़ ताकते रहते हैं, फिर कहते हैं—अरे, तू क्यों भीख मांगता है?

रमजू उसी तरह दांत निकालकर कहता है—बाबा पेट···!

पेट!···पेट किसके नहीं है?—हमारे भी तो है। हम भीख नहीं मांगते! तू जो मक्कारी करके यहां अपाहिज बना बैठा है, इससे क्या लाभ? अरे, उठकर हाथ-पांव चला, और कमाकर खा, यह तो परले सिरे का कमीनापन है! समझा? तुम लोगों ने इस देश की हालत बहुत ख़राब कर रक्खी है!

रमजू मुंह बाये सब सुनता रहा कि अंत में कुछ मिलेगा। पर जब लेकचर और विरक्ति-पूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त कुछ न मिला, और बाबू साहब चल दिये, तो उसकी निराशा का ठिकाना न रहा। तब भी उसके मुंह से निकला—दाता तेरा भला करेगा।

ज्योतिप्रसाद आगे बढ़े। सामने से वही जटाजूटधारी संन्यासी आ रहा था। पुष्ट शरीर, चेहरा खिला हुआ, गेरुआ वसन, और लाल-लाल आंखें! देखते ही ज्योतिप्रसाद की त्यौरी चढ़ गई। आप-ही-आप बोले—एक यह और आया पाजी!

संन्यासी ने तीव्र नेत्रों से ज्योतिप्रसाद पर दृष्टिपात किया, पर त्यौरी चढ़ी देखी, तो दृष्टि की तीव्रता का लोप हो गया। पास आकर नर्मी से बोला—बाबू......!

ज्योतिप्रसाद ने कड़ककर कहा—क्या है बे?

संन्यासी की घिग्घी बंध गई। लड़खड़ाती जीभ से बोला—बाबू, भूखा हूं।

ज्योतिप्रसाद चिल्ला उठे—भूखा है, तो साले, क्या मुझे खायेगा?—जाकर कुएं में डूब मर!

और वह आगे बढ़ गए। संन्यासी भी अपना-सा मुंह लिये चल दिया।

ज्योतिप्रसाद चले। अपने इस निरर्थक क्रोध पर मन कुछ विषण्ण हो गया। संन्यासी की स्थिति पर कुछ दया भी आई, और इसी वक्त भिखारियों के पक्ष में उनके मस्तिष्क ने कई मौलिक युक्तियों की सृष्टि कर डाली।

पर पहुंचते-पहुंचते वह क्रोध भी, विषण्णता भी और वे युक्तियां भी, सब लोप हो चुकी थीं।

बैठक में तीन-चार सज्जन उपस्थित थे। सब के शरीर पर

खद्दर के वस्त्र और चेहरों पर नई तरह के भाव थे। सब बैठक में बैठे आपस में हँसी-दिल्लगी कर रहे थे। ज्योतिप्रसाद पहुंचे कि सबका भाव बदल गया; जैसे सूरज के आगे बदल आ गया, और खिली धूप की जगह पलक-मारते छाया हो गई।

थोड़ा-बहुत परिचय तो सभी से था, पर जगन्नाथ घनिष्ठ थे। हँसकर बोले—जनाब की प्रतीक्षा में दरे-दौलत पर उपस्थित हैं।

ज्योतिप्रसाद आसीन होकर बोले—कहिये, क्या हुक्म है?

जगन्नाथ दांत निकालकर बोले—इस महीने की तनख्वाह छीनने आये है।

ज्योतिप्रसाद सहमकर बोले—क्या?

हां जी बाबू बिहारीलाल, अब बोलो न।—जगन्नाथ ने अपने निकटस्थ साथी से कहा।

बिहारीलाल ने गांधी-कैप सरका कर कई बार मुंह का भाव बदला, फिर ऊपर का ओंठ नाक की नोक से छुआया, और कुछ बहियां, रसीद-बुकें और कुछ हैंड-बिल खद्दर के बस्ते से निकालकर मेज़ पर पटक दिये।

एक हैंड-बिल ज्योतिप्रसाद के हाथ में दे दिया गया।

शीर्षक था—"भयङ्कर आघात!" फिर छोटी सुर्ख़ी में था—"हिन्दूधर्म ख़तरे में!" इसके नीचे और छोटे टाइप में छपा था—"लाखों अनाथों की रक्षा का आयोजन—हिन्दुओं से अपील।"

देव-नागरी का निम्नलिखित पद्य देकर बात शुरू की गई थी—

हिन्दू-जाती आज जाती, है रसातल को सुनो;
लाखों बच्चे भ्रष्ट होते उनकी कहानी को सुनो।

फिर उस लम्बे हैंड-बिल में बहुत-सी बातें लिखी हुई थीं। उपर्युक्त पद्य का माधुर्य्य लूटकर और हैंड-बिल के घोर अशुद्ध-

वक्तव्य को समाप्त करके, ज्योतिप्रसाद बोले—स्कीम तो अच्छी है!

जितनी देर में हैंड-बिल समाप्त हुआ, सबकी नज़र उनके चेहरे पर जमी रही। अब यह बात सुनकर जैसे सब-के-सब पानी का छींटा खाकर जाग उठे, और हर्षित होकर एक साथ बोले—अजी, यह तो आशा ही थी आपसे......।

ज्योतिप्रसाद ने कोशिश करके मुंह की मलिनता छिपाई और कहा—आप लोगों का साहस प्रशंसनीय है।

बिहारीलाल बोले—अजी देखिए, आज लाखों की संख्या में अनाथ बच्चे विधर्मी हो रहे हैं......। (ज्योतिप्रसाद ने अतिशयोक्ति पर ध्यान न दिया, और मुंह की मलिनता छिपाने के लिए सिर हिलाकर समर्थन किया।) ईसाई और मुसलमान इन बच्चों की खोज में मुंह-बाये फिरते हैं, और अन्त में उन्हीं की मदद से हमारे पवित्र धर्म पर कुठाराघात करते हैं। अगर हमारे पूर्वज इस बात का ख्याल रखते, तो आज भारत में विधर्मियों की इतनी संख्या कभी न होती। (मलिनता का भाव छिपाने में कुछ-कुछ सफल हुए हैं, इसलिए ज्योतिप्रसाद बराबर समर्थन-सूचक सिर हिलाए जा रहे हैं।) आज हमारे अनाथ बच्चों की जैसी दुर्दशा हो रही है, उसे देखकर किस हिन्दू की छाती फट न जायगी? किसका हृदय हाहाकार न कर उठेगा? किसका...”

बिहारीलाल ने कब अपनी स्पीच समाप्त की, ज्योतिप्रसाद को इसका होश नहीं। जैसे रेल ठहरने पर नींद खुल जाती है, वैसे ही बिहारीलाल की स्पीच का प्रवाह रुकने पर उन्हें होश आ गया! जगन्नाथ हँसते हुए कह रहे थे—कहिए, कुछ समझे?

ज्योतिप्रसाद सिटपिटाकर बोले—जी हां, ठीक है—बड़ी अच्छी बात है।

विहारीलाल ने 'डोनेशन-वुक' खोलकर उनके आगे रख दी, पेंसिल हाथ में थमा दी, और स्वयं रसीद-वुक लेकर फाउंटेन-पेन खोलने लगे।

ज्योतिप्रसाद बोले—क्या हुक्म है?

विहारीलाल ने गिड़गिड़ाकर कहा—अजी वाह, मैं क्या हुक्म चलाऊंगा, मैं तो आपका सेवक हूं!

जगन्नाथ ने हँसकर वेतकल्लुफी से कहा—आपके पास 'अपील' करने से हमारा उद्देश्य यह है कि कम-से-कम आपका एक महीने का वेतन हड़प कर जायं।

ज्योतिप्रसाद के मुख पर जैसे संकट का भाव उदित हुआ, उसे देखकर आपको दया आती और अनाथाश्रम के 'डेपुटेशन' पर हँसी छूटती।

ज्योतिप्रसाद ने पन्ने पलटकर 'डोनेशन-वुक' का निरीक्षण किया, फिर थोड़ी देर सोचते रहे; और फिर कलेजे पर पत्थर रखकर······लिख दिया।

जगन्नाथ ने खूब हाथ-पैर मारे, पर पच्चीस रुपये से एक कौड़ी ज्यादा न लिखी गई।

(५)

दो वार खाली जा चुके थे, इसलिए रमजू ने टेर के स्वर में वृद्धि की—वावा, एक पैसा···! तेरे बच्चों की खैर!

राय साहव हुकूमतराय आते नज़र पड़े। छज्जेदार पगड़ी की वहार देखने योग्य थी। रफ़ल का अंगरखा उड़कर भागा जा रहा था। चूड़ीदार पायजामा खूव कसा हुआ था। सलीमशाही जूते और मौजे अद्भुत शोभा वढ़ा रहे थे।

रमजू ने इरादा कर लिया कि दोनों वैरंग दाताओं की

क़मर इस एक से निकालूंगा। दूर से देखा, और चिल्लाने लगा—बाबा, तेरे बच्चों की ख़ैर···कुछ देना··· !

इस बार टेर में परिवर्तन कर दिया, क्योंकि एक पैसे से ज़्यादा की आशा और अभिलाषा थी।

हुक्मतराय एक-एक पद रखते आगे बढ़े ! माथे की त्योरी से मालूम होता था कि किसी गहरी चिन्ता में हैं। ऐसा जान पड़ता था कि किसी ने उन्हें छेड़ा, तो बरस ही पड़ेंगे। पर रमज़ू को इतनी बुद्धि होती, तो भीख क्यों मांगता ? उसे तो बस एक पैसे से ज़्यादा की धुन थी। उनका एक-एक क़दम पड़ता था, और उसके दिल पर जैसे चोट पड़ती थी। हर एक क़दम पर या हर एक चोट पर आवाज़ भी तेज़ होती जाती थी।

सामने आने में तीन पद की देर थी। रमज़ू गला फाड़कर चिल्लाया—बाबा, तेरे बच्चों की ख़ैर···!

दो पद रह गए। रमज़ू आगे सरक गया। आवाज़ फिर निकली—बाबा, तेरे बच्चों···।

एक ही पद रह गया था। रमज़ू की आंखें निकल आईं। पूरा ज़ोर लगाकर बोला—बाबा, तेरे···

हुक्मतराय ठीक सामने आ गये। उन्होंने नज़र से एक बार चीखते हुए भिखारी को देखा। विचार-शृङ्खला में बुरी तरह बाधा डालनेवाले इस ग़रीब पर क्रोध तो बहुत आया, पर पी गये।

वह पिया हुआ क्रोध मानो अभागे भिखारी ने बाहर उगलवा लिया। क्या किया ? जब हुक्मतराय ने आगे क़दम रक्खा, तो आवेग में भरकर उसने उनका पैर पकड़ लिया। मुँह से बोला—बाबा, तेरे···!

हुक्मतराय गिरते-गिरते बचे। वह पिया हुआ क्रोध बाहर

आ गया, और सारा शरीर आवेश के कारण एकबारगी झन-झना उठा। उस ग़रीब की इतनी हिम्मत ! पहले तो उस क़ीमती विचार-वाटिका का सत्यानाश कर दिया, फिर···फिर ऐसे अपमान के साथ संबोधन करता है! और पाजी की यह हिम्मत कि पैर पकड़ लिया······।

यह सब विचार भयानक वेग के साथ पलक मारते दिमाग़ में घूम गए। हुकूमतराय की आंखों से चिनगारियां छूटने लगीं। आंखें निकालकर और दांत पीसकर उन्होंने पीठ फेरी। रमजू आशा और भयपूर्ण नेत्रों से देख रहा था। पर उनका तो विवेक नष्ट हो चुका था; उसके कातर भाव को लक्ष्य करने योग्य भावुकता उनमें कहां से आती? शरीर में जैसे ज्वाला भर गई! उन्होंने पूरे वेग से एक लात रमजू पर चलाई, और पास से एक पत्थर का टुकड़ा उठाकर उसके सिर पर दे मारा।

रमजू की पहली चीख़ हवा में विलीन हो गई! फिर वह दहाड़ मारकर रो उठा। सिर से ख़ून की मोरी-सी बह निकली। लात की चोट भी पूरी बैठी थी।

हाथ-पैर का काम ख़त्म हुआ, तो मुंह का शुरू हुआ। गन्दी-से-गन्दी गालियों की बौछार-सी होने लगी।

रमजू घाव और मार की पीड़ा से चीख़ता था, रोता था और 'हाय-हाय' करता था। आस-पास इतनी भीड़ इकट्ठी हो गई थी, पर कोई माई का लाल उसका पक्ष लेकर हुकूमतराय से जवाब-तलब करनेवाला न था। जो लोग रायसाहब के परिचित थे, वे उनसे प्रश्न कर रहे थे, उन्हें शान्त कर रहे थे, और उनके क्रोध का अतिरंजित कारण जानकर असहाय रमजू पर रोष-प्रदर्शन कर रहे थे।

जी, आपकी सम्मति भी लेनी थी ! और चंदा तो आप-ही जैसे……।

आप फिर किसी समय मिलें। जो उचित परामर्श मैं दे सकता हूं, दूंगा ! कहकर रायसाहब एकदम चल दिये। डेपुटेशन भी वापस फिरा।

अब बिहारीलाल ने गम्भीरता की चादर उतार फेंकी, और हँसकर कहा—"साला है बड़ा घाघ !"

अब सब का रूप अकस्मात् बदल गया, और पांच मिनट बाद दूसरे शिकार की खोज होने लगी।

उधर रायसाहब हुकूमतराय घर पहुंचे। खूब ठाठ का घर था। घर क्या महल समझो। देखते ही नौकर-चाकर दौड़ पड़े। जूता उतारते हुए एक नौकर ने कहा—सरकार, कमिश्नर साहब का चपरासी आया था।

क्यों ?—कहकर रायसाहब एक साथ उछल पड़े।

एक चिट्ठी दे गया है; दफ्तर में रक्खी है !

रायसाहब नंगे पांव उधर दौड़े। चिट्ठी खोलना कठिन हो गया। सुन्दर लिफाफे में मोटे कागज पर छपा हुआ एक सर्कूलरनुमा पत्र था। नीचे चीफ-कमिश्नर के हस्ताक्षर थे।

था क्या ? वायसराय ने बादशाह के अच्छे होने की खुशी में 'थैंक्स-गिविंग-फंड' खोला है। उसी की सूचना इस चिट्ठी द्वारा रायसाहब हुकूमतराय को दी गई है।

इस छपी हुई चिट्ठी को रायबहादुरी के स्टेशन का टिकट समझकर रायसाहब उसी वक्त एक हजार रुपये का चेक 'थैंक्स-गिविंग-फंड' में भेजने की व्यवस्था करने लगे।

———

श्री वाचस्पति पाठक

हिन्दी साहित्य के लेखकों में आपका आदरणीय स्थान है। आपको प्रारम्भ से ही उच्च-कोटि के साहित्यिकों की संगति का चाव था। आपकी साहित्यिक रुचि और साहित्य-सृजन की प्रेरणा इसी सुयोग का फल है। आपने कविताएं भी लिखी हैं और कहानियां भी। आजकल आपकी रुचि कविता से कुछ हट गई है और आप कहानियों की ओर ही प्रवृत्त हैं। शैली और कला की दृष्टि से आपका स्थान प्रसादधारा में है। आप इस धारा के सबसे सफल अनुयायी माने जाते हैं। वेदना और अभाव का करुण और सजीव चित्रण करने में आप सिद्धहस्त हैं। भाषा आपकी सरल और विषयानुरूप होती है। मनोभावों का विश्लेषण आप बड़ी कुशलता से करते हैं। आपकी कहानियों के दो संग्रह—"द्वादशी" और "प्रदीप"—छप चुके हैं।

आपका निवास-स्थान प्रयाग है। आपका जन्म सन् १६०६ में नवाबगंज, काशी में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा भी वहीं घर पर ही हुई। आपका रचनाकाल सन् १६२६ से प्रारम्भ होता है। तब से आप निरन्तर साहित्य-सेवा कर रहे हैं। आजकल आप लीडरप्रेस, प्रयाग के प्रकाशन-विभाग के कर्त्ता-धर्त्ता हैं।

कागज़ की टोपी

एक छोटी-सी झोंपड़ी है। रात के आठ बज गये हैं। उसमें दीपक नहीं जला है। आकाश में जो चांद उगा है, उसी का धूमिल प्रकाश, इस झोंपड़ी में दो प्राणियों के मलिन चित्र दीवारों पर अंकित कर रहा है। एक तो बुढ़िया, जिसकी उमर ५० से कम नहीं है। दूसरा जो सोया हुआ है, वह पांच-छः वर्ष का बच्चा है। वह उस बुढ़िया का पोता है। यही—ठीक इस झोंपड़ी के मलिन चित्र की तरह—उस बुढ़िया का आधार है। इस झोंपड़ी में बस यही दो, चित्र और ये प्राणी—शेष और सब, जो होना चाहिए, कुछ भी नहीं दीखता है। सब जैसे अन्धकार में लुप्त हैं; पर सच तो यह है कि उनके पास कुछ है ही नहीं। काल ने ठीक उन्हें वैसा ही विचित्र बना दिया है।

बुढ़िया शाम ही को गांव के कई घरों में घूम कर अपने बच्चे को खिला आई है। अपने खाने के लिए भी उसके आंचल में कुछ भुना हुआ दाना बंधा है; पर इस शीत की रात में वह पहले बच्चे को सुला देना चाहती है। उसके गल कर सिमटे हुए पेट में भूख न भी हो; तो कुछ आश्चर्य नहीं है। क्योंकि वह उधर कुछ भी ध्यान न देकर बड़ी तल्लीनता से लोरियां गुनगुना रही है। बच्चा अभी सोया नहीं है। उसकी स्निग्ध-उज्ज्वल दो बड़ी आंखें अपनी गम्भीर नीरवता में स्तब्ध हैं।

वह बच्चा शाम को जितने भी घरों में दादी के साथ घूमा है, सभी जगह उसने एक ही चर्चा सुनी है। सब ने उसकी दादी से चन्द्रग्रहण में चलने के लिए बातें की हैं। जब वह अपनी दादी की गोद से अलग होकर खेलने के लिए लड़कों की पंक्ति में गया, तब उनमें से कोई भी उसके साथ प्रतिदिन का चिर-परिचित खेल नहीं खेल पाया है। उन सब ने उससे अनजानी ही बातें की हैं। सब अपने उत्साह में रम रहे हैं। कौन खिलौने, बाजा, कपड़े और टोपियां लेगा? इसी सूचना ने सबको निहाल कर दिया है। उस बालक के मन में ऐसी चिन्ता कभी उदय नहीं हुई है। वह विकल हो गया है।

बुढ़िया लोरियों की मधुरता में और लड़का अपने विचारों में लीन है। वे एक दूसरे से अपने में एकदम अलग हो रहे हैं; पर, बच्चा अपने विचारों की गुत्थियों को अकेले नहीं सुलझा पाता है। वह दादी को पुकारता है······दादी!······ओ री दादी!

दादी लोरी बन्द कर देती है, वह उत्सुकता से पूछती है—हां, क्या है बेटा?

कहां ग्रहण लगेगा दादी?—वह पूछता है,—लल्लू, छैल, मिन्नी और वह छोटी भी कहती है कि वहां जायँगे?

बुढ़िया के मुंह पर स्नेह चमक रहा है। वह उसकी बातें सुन कर घबरा जाती है। वह निराश स्वर में कहती है—बनारस में। यहां से बड़ी दूर पर ग्रहण लगेगा।

लड़के को इतने से सन्तोष नहीं होता है। वह बड़े आश्चर्य

से पूछता है—तो फिर मिन्नी और छोटी कैसे जाएंगी ? वे कहती हैं—हम वहां खिलौने लेंगी—कपड़े लेंगी—कह कर वह बुढ़िया की ओर बड़ी उत्सुकता से देखता है। वह चुप रहती है। उससे लड़के का कौतूहल बढ़ता है। वह फिर पूछता है—तो क्यों दादी, सचमुच वहां खिलौने मिलते हैं।

मिलते होंगे बेटा!—उसकी उत्सुकता से वह निराश हो रही है। उसके मन में एक अस्पष्ट चित्र उदय हो रहा है। वह खीझ कर बोलती है—वहां बड़ी भीड़ होती है, जाड़े की इस रात में वहां सब नहाते हैं, बस और कुछ नहीं होता। वह अपना विरोध प्रकट करने के लिए एक दीर्घ श्वास छोड़ कर चुप हो जाती है।

लड़के का आश्चर्य और बढ़ जाता है। वह और आतुरता से पूछता है—बड़ी भीड़ होती है ?

और क्या!—वह क्षोभ से भर कर कहती है—ऐसी भीड़ होती है, कि कितने दब जाते हैं! एक दूसरे पर गिर कर मर जाते हैं! और बेटा, एक दूसरे से छूट कर उस भीड़ में भूल

जैसे लय हुई जा रही है। यह बच्चा इसे जैसे उसके प्यार का बन्दी होकर समझ रहा है। उसे राह नहीं मिल रही है। वह जैसे मुक्त होने के लिए पूछता है—तब, हम न चलेंगे दादी ?

उसकी इस निराश वाणी से बुढ़िया का हृदय कसक उठता है। अब उसके हृदय की इच्छा का दमन उससे नहीं हो सकता, उसके लिए वह सब कुछ कर सकती है। वह एक नवीन उत्साह से पूछती है—तू चलेगा बेटा ?......अच्छा मैं ज़रूर चलूंगी; और सब जायँगे तू ही न जायगा ! मैं तुझे ज़रूर लिवा ले चलूंगी। मेरा राजा !......मेरा बेटा !—वह उसे चूमती है। दोनों हँसते हैं। दोनों प्रसन्न हैं। फिर दोनों परस्पर विश्वास रख कर सो जाते हैं।

(२)

बालक अब उसे दिन-भर से तंग कर रहा है। हर बार, प्रत्येक समय वह एक ही बात करता है, उसे आश्वासन मिलता है, विश्वास होता है; पर फिर वह उसी की गांठ बांध लेना चाहता है। उसकी रट कम पड़ती ही नहीं है। गांव के चलने वाले और बालकों के पास भी वह दौड़-दौड़कर जाता है। वह अब किसी से कम नहीं है। इसी विश्वास से वह सब को देखता है।

उसकी दादी संकोच में गड़ी हुई है। वह पहले अपने आप ही चलने की नितान्त अनिच्छा प्रकट करती है। अपन गरीबी में, जीवन-यापन से अधिक के लिए किसी के सिर बोझ बनना उसे कभी पसन्द नहीं हुआ है। और फिर का

में—पुण्यकार्य में······! अपनी इच्छा को मसल कर वह इसी से अपने को बचाती रही है। पर, अब वह वैसा नहीं कर सकती। वह उद्विग्न है। सबसे विनय कर रही है। यह बुढ़िया को काशी नहलाने का पुण्य-लाभ!—हाथ जोड़ कर—वह गांव भर को बता आई है। उन्हीं लोगों के विश्वास पर वह जा रही है। अब मरने के पहले उसकी जैसे यही साध है। सब के साथ वह भी उत्साह दिखा रही है। उसके भी मन में उमंग है।

सब के साथ वह भी तैयार हो गई है। उसने अपनी पोटली सिर पर रख ली है और बच्चे की अंगुलियां उसके हाथ में हैं। अपने सब साथियों के पीछे उसने अपना मार्ग पाया है। उसकी निरीहता में जैसे उसका यही स्थान है। उस लड़के ने जैसे और

(३)

लड़के ने जैसे बड़ी प्रतीक्षा की है। अब उससे होने की नहीं। इस विशाल नगर में आकर उसका धैर्य्य वृक्ष के कोमल पत्ते की तरह कांपने लगा है। उसका लोभ सर्वग्रासी मुंह फाड़ कर खड़ा है। उसकी बुद्धि काम नहीं दे रही है। वह रह-रह कर चिल्लाता है, अनुनय करता है—दादी ! तूने मुझे कुछ नहीं ले दिया.—ऊँ, ऊँ, ऊँ।

वह कहती है—अब तू दिन-भर रोयेगा ?

वह तनिक चुप होता है। फिर कहता है—दादी ! मुझे भी मिठाई दिला दे !

आह, तूने ग़ज़ब कर डाला रे !—दादी उसकी बात सुन कर चीख़ उठती है—यह नई आदत सीखी है ?

बालक डर जाता है। उसने अपनी दादी से कभी फटकार तो पाई नहीं है। उसकी डांट से वह जैसे अपमानित होता है। लज्जा से अभिभूत होकर वह दादी की गोद में छिप जाता है। वह अब जैसे कुछ नहीं बोलेगा।

बुढ़िया इसे समझ रही है, वह कहती है—बेटा ! अभी तू ने गुड़ खाया है न ? वही तो मिठाई है, तू व्यर्थ में हठ करता है। इतने पैसे मेरे पास कहां हैं ? ले यही तो मेरे पास पैसे हैं, इनसे जो चाहे तू ले—कहकर बुढ़िया अपनी गांठ खोलने लगती है; पर बच्चा उसे रोकता है।—ना-ना, तू ही ले देना।—वह अभी अपने को उसकी गोद में ही छिपाये रखना चाहता है।

उसी समय शहर चलने की तैयारी हो गई है। लाल, पीली और काली बूटियों की चादरें ओढ़े उन औरतों का गरोह, जैसे रंग-बिरंगी तितलियों के झुण्ड हैं। उसके पीछे बुढ़िया भी किसी सूखे वृक्ष के ठूंठ की तरह लगी है, जिसे छोड़ कर ये उड़ी जा रही हैं। उनकी आंखें विस्मय से विमुग्ध हैं,। नगर उनके लिए अलौकिक सत्ता है जिसको उनकी कल्पना इन्द्रलोक बना देती है। बच्चे और भी प्रसन्न हैं। घोड़ा, गाड़ी, मोटर और साइकिलें—इनकी पों-पों और टुन-टुन कितने गज़ब हैं। वह उछल रहे हैं! मोटर से कीचड़ उछल कर पड़ने पर भी सब हँस रहे हैं! कैसा अच्छा यह उनका आश्चर्य और भाग्य है!

दादी देखती है। एक आदमी लाल-हरी काग़ज़ की टोपियों की छतरी-सी लिये खड़ा है। वह रह-रह कर बोल रहा है—ले लो, ये लाल-हरी टोपियां, तीन-तीन पैसे में। बुढ़िया यह सुन जैसे उत्साह में आ गई है। वह उसे ले रही है। बच्चा मुग्ध हो रहा है। दादी ने अपनी छोटी-सी गांठ खाली कर दी है। उसे टोपी पहना कर वह जैसे उससे अधिक पा गई है। बहुत अधिक लाभ में जैसे प्रसन्न है। वह चुप है। आनन्द-विभोर है। वह केवल प्रसन्न दृष्टि से उसे देख रही है, बच्चा जैसे श्रीमान् है। वह जैसे आज उसका नहीं है। वह दूर से—बहुत चाहने, प्यार करने पर, आज उसका बनकर आया है। ऐसा प्यार! वह अकिंचन कुछ न बोलेगी। केवल अभी दृष्टि भर देख तो ले। वह उसे प्रसन्न कर सकी है। वह गर्व-स्फीत है।

बच्चा कैसा सच का राजा है। अभिमान से भरा है। अब वह किसी की ओर नहीं देख रहा है। वह अपनी काग़ज़ की टोपी लगाता है, उतारता है, देखता है, छाती से चिपकाता है, हँसता है। वह अपने में प्रसन्न हो रहा है। वह लाल-हरी टोपी उसकी आंखों को रंगीन कर रही है। रोशनी के प्रकाश में उसके कपड़े को रंगीन कर रही है। वह देखता नहीं है, उसके मुख को भी रंगीन कर रही है। वह वैसा ही प्रसन्न है। अब वह अपने में ही चीखता है, हँसता है और बातें करता है। वह उसी में भूल गया—रम गया है।

(४)

है। वह स्तम्भित हो गई है। इस अपरिचित जन-समूह में अब वह अकेली है। अब—आह······आंधी-सी चलने लगी है। ऊपर आकाश में बादल धीरे-धीरे गुड़ुम-गुड़ुम कर रहे हैं। उसका मन भीतर-बाहर हो रहा है। उसे बच्चे को बचाना है। उसकी व्याकुलता उसी के लिए बढ़ रही है। उसे कहीं स्थान नहीं है। वह ऊंचे-ऊंचे महल, उनके आदमी, उसकी कहीं पहुंच नहीं है। आशा नहीं है। वह विपद् में फंसी है। वह 'अस्सी' की ओर बढ़ रही है। वहीं वह ठहरी थी। अब भी वहीं जाकर रुकेगी, वह बच्चे को छिपा कर भाग रही है।

वह भाग रही है। जल्दी में है। बच्चे को संभाल रही है। बच्चा उसकी उद्विग्नता नहीं समझता है। वह रह-रह कर अपनी टोपी उसे दिखा देना चाहता है। उसकी ऐसी अच्छी टोपी, उसकी दादी मजे में देख तो ले; वह व्याकुल है। उसकी तृप्ति असन्तोष में ढल रही है। वह अधीर होकर पुकार उठता है—दादी!······

दादी बोलती नहीं है। वह उसे चिपकाये जा रही है। सर्दी की रात है। हवा है। बादल है। इन सब का रूप उसके मन में एक दुनिया बन गई है जिसमें वह अकेली भाग रही है और सब जैसे उससे मुक्त हैं। उसकी आंखों के सामने का सारा दृश्य जैसे उस दुनिया के बाहर है; जहां से उसके लिए कोई आशा, सहानुभूति, प्रेम और करुणा नहीं है। वह सब से अलग है। झर···झर···झर···बड़ी बूंदों की झड़ी लग गई है। वह भाग रही है। बच्चे के कपड़े गीले हो गए हैं।

वच्चा भीग गया है। दादी की छाती में छिपे रहने पर भी उसके सिर से पानी चू रहा है। उसके लटीले वालों से फिसल कर छोटी-छोटी बूंदें चू रही हैं, जिनमें टोपी का रंग धुल रहा है। टोपी भीग कर लत्ता हो चली है। वालक उसे सिर पर और दवाये जा रहा है; जैसे अपनी चिर-संचित साध को उस झड़ी से वचा रहा है।

'अस्सी' का घाट सूना पड़ा है। पानी आकर निकल गया है; पर वादल अव भी आकाश में छिटके हैं। उनके वड़े-वड़े टुकड़े घूम-घूम कर चांद को घेर रहे हैं। उस अन्धकार में गैस की वत्ती अपनी रोशनी चुपचाप ज़मीन पर गिरा रही है। सारा मैदान विधवा के हृदय की भांति शून्य और धूमिल है। उसके सव साथी दूर न जाने किस कोने में पड़े हैं। उस मैदान के एक असहाय छोर में मलिन, निरीह और टूटी-स्मृति-सी वुढ़िया पड़ी है। उस पर एक पेड़ की छाया है। वह वहां अपने को अकेले देख रही है। वच्चे का शरीर भीगने पर भी उसे गर्म मालूम पड़ रहा है। उसका मन और भी वैठ रहा है। घरों में—छाया में न जाने कितने आदमी भरे पड़े हैं। सवकी सांस उसे जैसे स्पर्श कर जाती है। वह अपने मन में समझती और कानों से सुनती भी है; पर वह उन तक जा नहीं पाती है। उसकी निरीहता को कहीं शरण नहीं है। साहस के अभाव ही में वह मौन है।

पीपल के पेड़ का सहारा लिए वह पड़ी है। वह थक गई है। अपने शरीर को उसने एकदम छोड़ दिया है। उस गीले में वह

सो भी नहीं सकती। वह शिथिल होकर और भी अवसाद में बही जा रही है। हवा नहीं चल रही है, फिर भी पीपल के घने पत्ते हिल रहे हैं—चमक रहे हैं। उनका शीतल स्पर्श उसके मन को कंपा जाता है।

बच्चे की देह जलते तवे-सी लाल है। सम्पूर्ण शरीर में खून के रवे जैसे पड़े हैं। वह अपने उत्साह की दौड़ में शिथिल हो गया है। वह वहां से बढ़ भी नहीं पाता है। दादी उसे जकड़े हुए पड़ी है। इसी से जैसे क्षोभ में अवसन्न है। उसके हृदय पर वह बन्धन जैसे पहाड़ बन कर भार दे रहा है। वह ऊब रहा है। एक कांपती आवाज़ निकलती है—दा···दी !

हां—वह आह भर कर कहती है—क्या है लाल !—वह अपने गीले कपड़ों के घेरे के भीतर झांक कर बड़े कातर स्नेह से उसे देखने लगती है।

बच्चे को जैसे सहारा मिल जाता है। वह अपनी मन की गांठ खोल कर धीरे से कहता है—मेरी अच्छी टोपी, दादी !—उसने अपनी टोपी सिर पर दबा ली है।

बुढ़िया के मुंह से 'हां' भी नहीं निकल पाता है। उसका हृदय जैसे चिर गया है। बालक के काले हो रहे होठों पर बिखरी हँसी उसके कलेजे में और भी तीर बन कर धंस गई है। वह उसी पीड़ा में एक क्षण उसे देखती है, फिर उत्तर में केवल सिर हिला देती है, और भी जकड़ कर उसे अपनी गोद में छिपा लेती है।

बुढ़िया अपने क्लान्त शरीर में बेसुध पड़ी है। उसकी पीड़ा में एक ही कल्पना सिसक रही है—मेरी अच्छी टोपी······! अभी दो क्षण पहले की देखी, सिकुड़ी धुले हुए रंग की पिचकी-पिचकी टोपी, पहले-सी नई बन कर उसके भावों में रंग भर रही है। सचमुच वह उसी नशे में पड़ी है। उसके हाड़ों की ठठरी को पवन हिला देता है। वह जाग जाती है। फिर भी बच्चे की प्रसन्नता की निधि, वह लाल-हरी टोपी, उसे ढंक लेती है।

बच्चे का प्यार लुट गया है, इसी से वह लुट गई है। वह पीड़ा में डूब गया है, इसी से वह डूब गई है! वह बेहाल है, अशक्त है, असहाय है, मौन है, जल रहा है—कांप रहा है; इसी से उसकी दादी बेहोश है, निरीह है, निरवलम्ब है, चुप है, मर रही है—हिल रही है। वह अपने में नहीं है—खो गई है। रात भीगे पैरों भागी जा रही है।

पत्ते खड़खड़ा रहे हैं। उस प्रशांत नीरवता के हृदय की धड़कन जैसे बढ़ रही है। एक 'ठक' की आवाज़ होती है। कोई सामने आकर जैसे खड़ा हो जाता है। ओह······वह लम्बे लबादे में काली झब्बेदार पगड़ी से लैस हाथ की लम्बी मोटी लकड़ी पर अकड़ दिये एक सिपाही खड़ा है। उसे इस सुनसान रात में भागती हुई नदी की जलधारा को देख कर जैसे 'ठक' मार गया है। वह निश्चिन्त और सुखी है! उसने बुढ़िया की ओर देखा भी नहीं; पर वह एक बार फिर कांप गई है।

अब रात छिप चली है। ऊषा की राह में बादलों की लाल पहाड़ियों को वेध कर, सुनहली किरणें जल पर निकल आई हैं। उसकी गोद में उसका बच्चा काला पड़ गया है। बुढ़िया की पलकें जैसे गिरने लगी हैं, पर वह स्वयं लुढ़क जाती है, जैसे—प्रभात के लिए पांवड़े बिछा गई है।

श्री ऋषभचरण जैन

आप दिल्ली के एक प्रतिष्ठित जैन परिवार से संबंध रखते हैं। आपका जन्म सन १६११ में हुआ। लिखने की ओर आपकी रुचि बहुत पहले से ही है। आप अभी १६ वर्ष के थे जब आपकी सर्व-प्रथम कृति 'मास्टर साहब' हिन्दी-पुस्तक-कार्यालय दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुई थी। तब से आप दर्जनों उपन्यास और कहानियाँ लिख चुके हैं। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में प्रेमचन्द जी की कला और शैली का प्रभाव स्पष्ट है। 'भाई' नामक उपन्यास का वातावरण इस बात का प्रबल प्रमाण है। परन्तु उसके शीघ्र ही पश्चात् आप उस मार्ग से हट कर उग्र जी के यथार्थवाद की ओर अधिक आकृष्ट हुए। आपकी रचनाओं में नग्न वास्तविकता का चित्रण रहता है। सत्य की मात्रा लिये हुए भी ऐसा चित्रण सदैव ग्राह्य नहीं होता।

आपकी भाषा सजीव और भावपूर्ण होती है। प्रस्तुत कहानी आपकी एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें विविध वर्गों के विशिष्ट संस्कारों का सुन्दर दिग्दर्शन है।

अब रात छिप चली है। ऊषा की राह में बादलों की पहाड़ियों को वेध कर, सुनहली किरणें जल पर निकल आई उसकी गोद में उसका बच्चा काला पड़ गया है। बुढ़िया की जैसे गिरने लगी हैं, पर वह स्वयं लुढ़क जाती है, जैसे—प्र के लिए पांवड़े बिछा गई है।

श्री ऋषभचरण जैन

आप दिल्ली के एक प्रतिष्ठित जैन परिवार से संबंध रखते हैं। आपका जन्म सन १९११ में हुआ। लिखने की ओर आपकी रुचि बहुत पहले से ही है। आप अभी १६ वर्ष के थे, जब आपकी सर्व-प्रथम कृति 'मास्टर साहब' हिन्दी-पुस्तक-कार्यालय दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुई थी। तब से आप दर्जनों उपन्यास और कहानियाँ लिख चुके हैं। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में प्रेमचन्द जी की कला और शैली का प्रभाव स्पष्ट है। 'भाई' नामक उपन्यास का वातावरण इस बात का प्रबल प्रमाण है। परन्तु उसके शीघ्र ही पश्चात् आप उस मार्ग से हट कर उग्र जी के यथार्थवाद की ओर अधिक आकृष्ट हुए। आपकी रचनाओं में नग्न वास्तविकता का चित्रण रहता है। सत्य की मात्रा लिये हुए भी ऐसा चित्रण सदैव ग्राह्य नहीं होता।

आपकी भाषा सजीव और भावपूर्ण होती है। प्रस्तुत कहानी आपकी एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें विविध वर्गों के विशिष्ट संस्कारों का सुन्दर दिग्दर्शन है।

दान

चंदूलाल, रामचन्द, ज्योतिप्रसाद और हुकूमतराय चार आदमियों के नाम हैं।

चन्दूलाल एक घड़ी की दूकान में बीस रुपये का नौकर है। स्त्री है, एक बच्ची है। गुजर-बसर मुश्किल से होती है। कोट बरसों में बदलता है, जूता टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, टोपी का खर्च बचाने के लिए नंगे-सिर नौकरी पर जाता है। रामचन्द, साधारण गृहस्थी हैं। जाति के वैश्य हैं। कृष्ण के सच्चे भक्त हैं। गीता का नियमित पाठ करते और माथे पर चन्दन पोत कर घर से बाहर निकलते हैं। अनाज की मंडी में दलाली करते हैं। कृष्ण की कृपा से खासी आय हो जाती है। घर के लोग प्रसन्न या सुखी हैं। ज्योतिप्रसाद किसी अर्द्ध-सरकारी दफ्तर में हेड क्लर्क हैं। वेतन तीन सौ रुपया है। कपड़े रेशमी पहनते हैं। टोपी फेल्ट लगाते हैं। 'अबदुल्ला' का सिगरेट पीते हैं। प्रायः इंटर में और कभी-कभी सेकिंड क्लास में सफर करते और बीसों रुपया अपने और बच्चों के स्वास्थ्य की खोज में डाक्टर-वैद्यों को अर्पण करते हैं। हुकूमतराय, मोटी तोंद-वाले, क्षत्रिय के अपभ्रंश खत्री हैं। झब्बेदार पगड़ी लगाते हैं। मक्खनजीन का कोट या रफल का अंगरखा पहनते हैं। दोनों हाथों की उंगलियों में कई-कई अंगूठियां भरे रहते हैं। चूड़ीदार पायजामा पहनते हैं, रेशमी

कमरबंद हमेशा लटकता दिखाई देता है, और सलीम-शाही जूते या पम्प-शू धारण करते हैं। प्रायः मोज़ों का इस्तेमाल भी होता है, आंखों में सुर्मा और मुंह में पान चोवीस घंटे रमा रहता है। रायसाहब की पदवी प्राप्त कर चुके हैं, और '···साहब' की जगह '···बहादुर' बनने की मन में बड़ी लालसा है।

एक दिन ये चारों आदमी शहर के भिन्न-भिन्न भागों से अपने-अपने घर की तरफ़ चले।

(२)

रमजू एक भिखारी का नाम है। फटी-सी, सर्व-परिचित गूदड़ी ओढ़ सड़क के किनारे बैठा है। हाथ-पैर कांप रहे हैं, या कंपाये जा रहे हैं। शरीर जगह-जगह से ज़ख्मी हो गया है। मुंह पर घोर दीनता का भाव है। नीचे का होंठ फैल गया है। दांत निकले पड़ते हैं।

चन्दूलाल सामने से निकला, तो रमजू ओंठ फैलाकर दांत निकालकर चिल्ला उठा—बाबा, एक पैसा!···तेरे बच्चों की खैर···!

इस आर्त्त स्वर ने या इस शुभ कामना ने चन्दूलाल के पैर बांध दिये। जेब में एक ही पैसा था। सोचा था, लड़की के लिए दाल-सेव लेते चलेंगे। अब वह इरादा बदल गया, और पैसा रमजू की तरफ़ फेंक दिया।

कंपकंपी क्षण-भर को रुक गई, ओंठ सिकुड़ गए, दांत भीतर चले गए। पैसा उठाकर माथे से लगाया गया, और कृतज्ञ कण्ठ से रमजू ने कहा—दाता तेरा भला करेगा।

चन्दूलाल आगे बढ़ गया।

'छन्न' से आवाज़ हुई, और इस पैसे ने रमजू की थैली में पहुंचकर अपने जाति-भाइयों से मिलने की सूचना दी।

(३)

यह आवाज़ विलीन हुई थी कि रामचन्द आ पहुंचे। माथे पर अब तक चन्दन पुता हुआ था। मुंह से कृष्ण का नाम निकल रहा था, और मन अनाज की मण्डी में घूम रहा था।

रमजू का भाव झट बदल गया। ओंठ फैल गए, निकल आए, शरीर कांपने लगा, और स्वर में वही कातरता फूट निकली। हाथ फैलाकर चीख़ पड़ा—बाबा, एक पैसा !···तेरे बच्चों की ख़ैर······!

रामचन्द को कृष्ण-नाम और अनाज की मंडी के चिंतन में कोई व्याघात न हुआ, और वह बिना उधर देखे आगे बढ़ गया।

रमजू ने सतृष्ण नेत्रों से देखा और धीरे से कहा—दाता तेरा भला करेगा।

यह वाक्य अभ्यास-वश मुंह से निकल गया था, या सच-मुच उसकी ऐसी इच्छा थी, इसे हम नहीं जानते।

रामचन्द थोड़ी दूर आगे बढ़ा था कि किसी ने रोक दिया। नज़र उठाकर देखा, तो एक जटाधारी संन्यासी ! रामचन्द ने अवाक् होकर उन्हें ताका, और फिर दोनों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

संन्यासी कर्कश स्वर में बोला—बोल, साधु की इच्छा पूरी करेगा ?

रामचन्द सहमकर बोला—कहिए क्या है महाराज ?

संन्यासी ने इधर-उधर देखा। सड़क पर कोई न था। फिर वैसे ही कर्कश स्वर में बोला—तेरे मुंह में कृष्ण का नाम है। संन्यासी की इच्छा तू ही पूरी कर ! तेरा कल्याण होगा।

रामचन्द हाथ जोड़कर बोला—कहिए न महाराज ?

संन्यासी के भंडारे के लिये तुरन्त सवा रुपया दे। संन्यासी ने आंखें निकालकर कहा—तेरी जेब में है, देख, अभी निकाल; कल्याण होगा।

रामचन्द्र क्षण-भर को ठिठका, सो संन्यासी ने ज़मीन पर पैर पटककर कहा—नहीं देता? अच्छा ले, जाता हूं, याद रख, तेरा सर्वनाश हो जायगा?

रामचन्द एड़ी से चोटी तक लरज़ जाता है, और सवा रुपये का मोह त्याग देता है।

सवा रुपया लेकर संन्यासी लाल आंखें किए आगे बढ़ता है।

(४)

रमजू अपनी टेर शुरू करता है—बाबा, एक पैसा!··· ···तेरे बच्चों की खैर···!

अब ज्योतिप्रसाद आये। फ़ेल्ट तिरछी हो गई है। रेशमी कोट के बटन खुल गए हैं। कमीज़ झक-झक कर रही है। पतलून की 'क्रीज़' कुछ बिगड़ गई है। बूट अभी-अभी रुमाल से साफ़ किये गए हैं। सिगरेट से धुआं निकल रहा है।

रमजू की टेर कान में पड़ती है, तो थम जाते हैं। क्षण-भर विचित्र दृष्टि से इस दीन भिखारी की तरफ़ ताकते रहते हैं, फिर कहते हैं—अरे, तू क्यों भीख मांगता है?

रमजू उसी तरह दांत निकालकर कहता हैं—बाबा पेट···!

पेट!···पेट किसके नहीं है?—हमारे भी तो है। हम भीख नहीं मांगते! तू जो मक्कारी करके यहां अपाहिज बना बैठा है, इससे क्या लाभ? अरे, उठकर हाथ-पांव चला, और कमाकर खा, यह तो परले सिरे का कमीनापन है! समझा? तुम लोगों ने इस देश की हालत बहुत ख़राब कर रक्खी है!

रमजू मुंह बाये सब सुनता रहा कि अंत में कुछ मिलेगा। पर जब लेकचर और विरक्ति-पूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त कुछ न मिला, और बाबू साहब चल दिये, तो उसकी निराशा का ठिकाना न रहा। तब भी उसके मुंह से निकला—दाता तेरा भला करेगा।

ज्योतिप्रसाद आगे बढ़े। सामने से वही जटाजूटधारी संन्यासी आ रहा था। पुष्ट शरीर, चेहरा खिला हुआ, गेरुआ वसन, और लाल-लाल आंखें! देखते ही ज्योतिप्रसाद की त्यौरी चढ़ गई। आप-ही-आप बोले—एक यह और आया पाजी!

संन्यासी ने तीव्र नेत्रों से ज्योतिप्रसाद पर दृष्टिपात किया, पर त्यौरी चढ़ी देखी, तो दृष्टि की तीव्रता का लोप हो गया। पास आकर नर्मी से बोला—बाबू......!

ज्योतिप्रसाद ने कड़ककर कहा—क्या है बे?

संन्यासी की घिग्घी बंध गई। लड़खड़ाती जीभ से बोला—बाबू, भूखा हूं।

ज्योतिप्रसाद चिल्ला उठे—भूखा है, तो साले, क्या मुझे खायेगा?—जाकर कुएं में डूब मर!

और वह आगे बढ़ गए। संन्यासी भी अपना-सा मुंह लिये चल दिया।

ज्योतिप्रसाद चले। अपने इस निरर्थक क्रोध पर मन कुछ विपण्ण हो गया। संन्यासी की स्थिति पर कुछ दया भी आई, और उसी वक्त भिखारियों के पक्ष में उनके मस्तिष्क ने कई मौलिक युक्तियों की सृष्टि कर डाली।

पर पहुंचते-पहुंचते वह क्रोध भी, विपण्णता भी और वे युक्तियां भी, सब लोप हो चुकी थीं।

बैठक में तीन-चार सज्जन उपस्थित थे। सब के शरीर पर

खद्दर के वस्त्र और चेहरों पर नई तरह के भाव थे। सब बैठक में बैठे आपस में हँसी-दिल्लगी कर रहे थे। ज्योतिप्रसाद पहुंचे कि सबका भाव बदल गया; जैसे सूरज के आगे बदल आ गया, और खिली धूप की जगह पलक-मारते छाया हो गई।

थोड़ा-बहुत परिचय तो सभी से था, पर जगन्नाथ घनिष्ठ थे। हँसकर बोले—जनाब की प्रतीक्षा में दरे-दौलत पर उपस्थित हैं।

ज्योतिप्रसाद आसीन होकर बोले—कहिये, क्या हुक्म है?

जगन्नाथ दांत निकालकर बोले—इस महीने की तनख्वाह छीनने आये हैं।

ज्योतिप्रसाद सहमकर बोले—क्या?

हां जी बाबू बिहारीलाल, अब बोलो न।—जगन्नाथ ने अपने निकटस्थ साथी से कहा।

बिहारीलाल ने गांधी-कैप सरका कर कई बार मुंह का भाव बदला, फिर ऊपर का ओंठ नाक की नोक से छुआया, और कुछ बहियां, रसीद-बुकें और कुछ हैंड-बिल खद्दर के बस्ते से निकालकर मेज़ पर पटक दिये।

एक हैंड-बिल ज्योतिप्रसाद के हाथ में दे दिया गया।

शीर्षक था—"भयङ्कर आघात!" फिर छोटी सुर्ख़ी में था—"हिन्दूधर्म ख़तरे में!" इसके नीचे और छोटे टाइप में छपा था—"लाखों अनाथों की रक्षा का आयोजन—हिन्दुओं से अपील।"

देव-नागरी का निम्नलिखित पद्य देकर बात शुरू की गई थी—

हिन्दू-जाती आज जाती, है रसातल को सुनो;
लाखों बच्चे भ्रष्ट होते उनकी कहानी को सुनो।

फिर उस लम्बे हैंड-बिल में बहुत-सी बातें लिखी हुई थीं। उपर्युक्त पद्य का माधुर्य्य लूटकर और हैंड-बिल के घोर अशुद्ध

क़सर इस एक से निकालूंगा। दूर से देखा, और चिल्लाने लगा—बाबा, तेरे बच्चों की ख़ैर···कुछ देना···!

इस बार टेर में परिवर्तन कर दिया, क्योंकि एक पैसे से ज्यादा की आशा और अभिलाषा थी।

हुकूमतराय एक-एक पद रखते आगे बढ़े! माथे की त्यौरी से मालूम होता था कि किसी गहरी चिन्ता में हैं। ऐसा जान पड़ता था कि किसी ने उन्हें छेड़ा, तो बरस ही पड़ेंगे। पर रमज़ू को इतनी बुद्धि होती, तो भीख क्यों मांगता? उसे तो बस एक पैसे से ज्यादा की धुन थी। उनका एक-एक क़दम पड़ता था, और उसके दिल पर जैसे चोट पड़ती थी। हर एक क़दम पर या हर एक चोट पर आवाज़ भी तेज़ होती जाती थी।

सामने आने में तीन पद की देर थी। रमज़ू गला फाड़कर चिल्लाया—बाबा, तेरे बच्चों की ख़ैर···!

दो पद रह गए। रमज़ू आगे सरक गया। आवाज़ फिर निकली—बाबा, तेरे बच्चों···।

एक ही पद रह गया था। रमज़ू की आंखें निकल आईं। पूरा ज़ोर लगाकर बोला—बाबा, तेरे···

हुकूमतराय ठीक सामने आ गये। उड़ती नज़र से एक बार चीख़ते हुए भिखारी को देखा। विचार-शृङ्खला में बुरी तरह बाधा डालनेवाले इस ग़रीब पर क्रोध तो बहुत आया, पर पी गये।

यह पिया हुआ क्रोध मानो अभागे भिखारी ने बाहर उगलवा लिया। क्या किया? जब हुकूमतराय ने आगे क़दम रक्खा, तो आवेग में भरकर उसने उनका पैर पकड़ लिया। मुंह से बोला—बाबा, तेरे···!

हुकूमतराय गिरते-गिरते बचे। वह पिया हुआ क्रोध वापस

आ गया, और सारा शरीर आवेश के कारण एकबारगी झन-झना उठा। उस ग़रीब की इतनी हिम्मत ! पहले तो उस क़ीमती विचार-वाटिका का सत्यानाश कर दिया, फिर···फिर ऐसे अपमान के साथ संबोधन करता है ! और पाजी की यह हिम्मत कि पैर पकड़ लिया······।

यह सब विचार भयानक वेग के साथ पलक मारते दिमाग़ में घूम गए। हुकूमतराय की आंखों से चिनगारियां छूटने लगीं। आंखें निकालकर और दांत पीसकर उन्होंने पीठ फेरी। रमजू आशा और भयपूर्ण नेत्रों से देख रहा था। पर उनका तो विवेक नष्ट हो चुका था; उसके कातर भाव को लक्ष्य करने योग्य भावुकता उनमें कहां से आती ? शरीर में जैसे ज्वाला भर गई ! उन्होंने पूरे वेग से एक लात रमजू पर चलाई, और पास से एक पत्थर का टुकड़ा उठाकर उसके सिर पर दे मारा।

रमजू की पहली चीख़ हवा में विलीन हो गई ! फिर वह दहाड़ मारकर रो उठा। सिर से ख़ून की मोरी-सी बह निकली। लात की चोट भी पूरी बैठी थी।

हाथ-पैर का काम ख़त्म हुआ, तो मुंह का शुरू हुआ। गन्दी-से-गन्दी गालियों की बौछार-सी होने लगी।

रमजू घाव और मार की पीड़ा से चीख़ता था, रोता था और 'हाय-हाय' करता था। आस-पास इतनी भीड़ इकट्ठी हो गई थी, पर कोई माई का लाल उसका पक्ष लेकर हुकूमतराय से जवाब-तलब करनेवाला न था। जो लोग रायसाहब के परिचित थे, वे उनसे प्रश्न कर रहे थे, उन्हें शान्त कर रहे थे, और उनके क्रोध का अतिरंजित कारण जानकर असहाय रमजू पर रोष-प्रदर्शन कर रहे थे।

जब अधिक भीड़ इकट्ठी होती देखी, और क्रोध का खासा स्खलन हो चुका, तो रायसाहब आगे बढ़े।

बिलखते हुए रमजू की तरफ़ किसी का ध्यान न था। सब-के-सब आश्चर्य की मूर्त्ति बने, सहमे-से, आतंक-पूर्ण रायसाहब को निहार रहे थे। रामचन्द से सवा रुपया ऐंठनेवाला और ज्योतिप्रसाद की झिड़की खाने वाला संन्यासी भी चुपचाप भीड़ में खड़ा था।

घर थोड़ी दूर रह गया था। किसी ने आवाज़ दी। रायसाहब...!

रायसाहब ने पीछे फिरकर देखा—अनाथाश्रम का डेपुटेशन! आवाज़ देनेवाला जगन्नाथ था। रायसाहब से भी उसका साधारण परिचय था। उसी बल के आधार पर उसने आवाज़ दी थी।

रायसाहब थम गए। डेपुटेशन के लोग गर्दन झुकाये, खद्दर के कुरतों की सीवन को टटोलते हुए आगे बढ़े। एक के हाथ में हैंड-बिल थे, दूसरे ने रसीदबुकें ले रक्खी थीं, तीसरे के पास थैली और डोनेशनबुक थी। जगन्नाथ खाली हाथ था।

रंग-ढंग देखकर रायसाहब ने बहुत कुछ अनुमान कर लिया। गुस्सा अभी पूरी तरह शांत नहीं हुआ था। यह नये हमले की तैयारी देखी, तो त्योरी में बल पड़ गए। फिर भी थमे रहे।

डेपुटेशन पास आया। सब ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया। माथे की त्योरी नष्ट किये बिना ही रायसाहब ने सिर हिलाकर अभिवादन का उत्तर दिया। डेपुटेशन कुछ शंकित हुआ।

जगन्नाथ ने कहा—कहिए, आपका मिज़ाज तो अच्छा है?

रायसाहब मुड़कर बोले—जी हां, आप इधर कहां चले?"

जगन्नाथ ने देखा, रंग बेढंग है ? नरमी की नदी में डूबकर बोला—आपही के दौलतखाने पर क़दम-बोसी के लिए उपस्थित होने वाला था।

रायसाहब तब भी बे-तकल्लुफ़ी पर न आये। घुड़ककर बोले—मेरे······? क्यों, मुझ से क्या काम था ?

जगन्नाथ बोला—"आप तशरीफ़ ले चलिए, वहीं चलकर बताऊंगा।

रायसाहब अन खाकर बोले—आप कहते चलिए; घर पर तो मुझे मरने का भी अवकाश नहीं रहता।

जगन्नाथ ने इस अपमान को कतई न बरदाश्त कर कहा—अच्छा, तो बात यह है······।

उसने बिहारीलाल की तरफ़ देखा। एक हैंड-बिल राय-साहब की तरफ़ बढ़ा दिया गया।

हैंड-बिल उन्होंने न लिया। मोटी सुर्ख़ी पर दूर से ही नज़र डालकर बोले—क्या है यह ? ज़बानी फ़र्माइए, मुख़्तसिर······।

जगन्नाथ ने बिहारीलाल की तरफ़ देखा, और कहा—जी, लीजिए, आपसे परिचय करा दूं। आपका नाम······।

रायसाहब टोककर बोले—मतलब की बात कहिए न, मुझे देर हो रही है !

बिहारीलाल के मुंह पर से हवाइयां उड़ने लगीं।

जगन्नाथ बोला—जी, एक अनाथाश्रम की स्कीम है। आप जानते हैं, आजकल लाखों बालक···।

रायसाहब जल उठे। पहले कोई कड़ा उत्तर देना चाहते थे, फिर जगन्नाथ का मुंह देखकर रह गए। बोले—क्या चंदे के लिए आये हैं··· ?

जी, आपकी सम्मति भी लेनी थी ! और चंदा तो आप-ही जैसे……।

आप फिर किसी समय मिलें। जो उचित परामर्श मैं दे सकता हूं, दूंगा ! कहकर रायसाहब एकदम चल दिये। डेपुटेशन भी वापस फिरा।

अब बिहारीलाल ने गम्भीरता की चादर उतार फेंकी, और हँसकर कहा—"साला है बड़ा घाघ !"

अब सब का रूप अकस्मात् बदल गया, और पांच मिनट बाद दूसरे शिकार की खोज होने लगी।

उधर रायसाहब हुकूमतराय घर पहुंचे। खूब ठाठ का घर था। घर क्या महल समझो। देखते ही नौकर-चाकर दौड़ पड़े। जूता उतारते हुए एक नौकर ने कहा—सरकार, कमिश्नर साहब का चपरासी आया था।

क्यों ?—कहकर रायसाहब एक साथ उछल पड़े।

एक चिट्ठी दे गया है: दफ्तर में रक्खी है !

रायसाहब नंगे पांव उधर दौड़े। चिट्ठी खोलना कठिन हो गया। सुन्दर लिफाफे में मोटे कागज़ पर छपा हुआ एक सर्कुलरनुमा पत्र था। नीचे चीफ-कमिश्नर के हस्ताक्षर थे।

था क्या ? वायसराय ने बादशाह के अच्छे होने की खुशी में 'थैंक्स-गिविंग-फंड' खोला है। उसी की सूचना इस चिट्ठी द्वारा रायसाहब हुकूमतराय को दी गई है।

इस छपी हुई चिट्ठी को रायबहादुरी के··